सदाचार की कथाएं

[शिक्षाप्रद सरस कहानियां]

लेखक
आनन्दकुमार

Nand Kumar

Sh. Ghulam Mohamad & Sons.
Book-Sellers, Publishers & Stationers
Govt., Order Suppliers,
Maisuma Bazar, SRINAGAR KASHMIR.

SPS
891.433 A 48 J
25625

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

H 83.1
A 48 J

256

मूल्य : एक रुपया पचीस नये पैसे 1.25
सातवां संस्करण : १९६३ 1963
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

Acc. No 25625
Cost Rs. 1.25
Date 20.1.66

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

सूची

सपूत की पहचान	५
धन तुम्हारे पास है	१०
हाथ-पैर भी चलाइए	१६
सत्य का प्रभाव	१९
सुखी होने का उपाय	२७
पराक्रम दिखाओ	३२
धैर्य का पुरस्कार	४२
लोकनायक कौन होगा ?	४७
सच्ची भेंट	५१
स्वभाव की परीक्षा	५७
पैसे की मौत	६४
समय की नाप	७६
गुप्त शत्रु कौन है ?	८३
द्वेष का पतन	९८
अपने-पराये का भेद	१०४

: १ :

सपूत की पहचान

एक गांव के पनघट पर एक बार तीन स्त्रियां पानी भरने आईं। वहीं एक बुड्ढा यात्री बैठा हुआ सत्तू खा रहा था। तीनों औरतें ज़मीन पर घड़े रखकर बैठ गईं और बुड्ढे को सुना-सुनाकर आपस में इस प्रकार बातें करने लगीं :

एक स्त्री ने दूसरी से कहा—बहिन, पंडित पोथा-राम का शिष्य मेरा लड़का तोताराम जब से शास्त्री होकर आया है, तब से उसने धूम मचा दी है। सारे

गांव में उसीकी वाहवाही हो रही है। वह ऐसा शकुन बताता है कि चटपट लाभ होने लगता है। और सुनो, वह आकाश के तारों को गिन-गिनकर उनके नाम बता देता है। परलोक की सभी बातें उसे मालूम हैं। यमराज की कचहरी में कैसे फैसला होता है, इसका भी उसे पता है। भैरवजी के गणों के नाम, यमदूतों के नाम और सभी नरकों के नाम-धाम उसे याद हैं। पता नहीं, वह कैसे भगवान की सब लीलाएं जान लेता है ? ब्याह-शादियों में वह शास्त्रार्थ करते-करते विरोधी पंडितों के मुंह नोच लेता है। मैं ऐसे पंडितों को जन्म देकर अपने को धन्य मानती हूं। बाहर से कोई आता है तो मेरी ओर उंगली उठाकर दूसरों से कहता है—देखो, देखो, वही शास्त्रीजी की मां हैं, पानी भरने जा रही हैं।

उसकी बातें सुनकर दूसरी स्त्री बोली—अरी सखी, मेरे लाल का हाल सुनो। वैसा पहलवान दस-पांच गांवों में देखने को नहीं मिलता। वह पांच सौ दंड और पांच सौ बैठक सवेरे और उतने ही शाम को करता है। अखाड़ों में वह ताल ठोंककर बड़े-बड़े नटों से भिड़ जाता है। बहिनजी, सच मानो, पहलवानी में उसने जितना नाम कमाया उतना कोई

क्या कमाएगा ! मैं उसे खूब हलवा-मालपुआ बनाकर दिन-भर खिलाती हूं । खा-पीकर वह हाथी की तरह झूमता हुआ जब सैर-सपाटे को निकलता है तो मैं फूली नहीं समाती । अभी मैं पानी भरने आ रही थी कि रास्ते में एक किसान ने मेरी ओर इशारा करके अपने लड़के से कहा—बेटा देख, यह उस पहलवान की मां है, जिसने कल कल्लू नट को चारों खाने चित कर दिया था । सच मान सहेली, मैं बेटे की बड़ाई सुनकर उछलने लगी ।

दोनों की बातें सुनकर तीसरी स्त्री चुप रही । इसपर एक ने उससे कहा—तू चुप क्यों है ? मालूम होता है तेरा लड़का लायक नहीं निकला ।

तीसरी स्त्री बोली—बहिनो, जैसा भी है, मेरे लिए बहुत अच्छा है । उसे नाम कमाने की लालसा नहीं है । वह सीधे स्वभाव का आदमी है; दिन-भर खेत में काम करता है, शाम को आकर घर के लिए पानी भर देता है । घर के काम से उसे इतनी छुट्टी ही नहीं मिलती कि वह बाहर नाम कमाए । आज मेरे बहुत कहने पर वह मेला देखने गया है; तभी मुझे पानी भरने आना पड़ा है । मुझे आज इधर आते देखकर देखनेवाले इसी बात पर आश्चर्य

करते थे कि मुझे पानी भरने के लिए कैसे निकलना पड़ा।

तीनों की बातें समाप्त हुईं तो वे जल्दी-जल्दी अपने-अपने घड़े में पानी भरकर वहां से रवाना हुईं। बुड्ढा यात्री भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। थोड़ी दूर जाने पर एक ओर से तीन नवयुवक आते दिखाई पड़े। वे तीनों उन स्त्रियों के लड़के थे, मेले से घर लौट रहे थे। एक ने पहली स्त्री के पास आकर कहा—मां, मैं अच्छी साइत से घर की ओर जा रहा हूं; रास्ते में भरा घड़ा मिलना शुभ है।

यह कहकर वह जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर चला। दूसरे ने दूसरी स्त्री से कहा—मां, मैं मेले के दंगल में बाज़ी मारकर आ रहा हूं; जल्दी पानी लेकर घर आना, मुझे भूख लगी है।

यह कहता हुआ वह भी आगे बढ़ गया। इसके बाद तीसरा युवक तीसरी के पास आया और उसके हाथ से पानी का घड़ा लेकर बोला—मां, तू क्यों पानी भरने चली आई, मैं तो आ रहा था।

घड़ा लेकर वह घर की ओर चला। तब अपने-अपने बेटों की ओर इशारा करके स्त्रियों ने साथ चलने-

वाले बुड्ढे से पूछा—बाबा, हमारे बेटों के बारे में तुम क्या कहते हो ?

बुड्ढा अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ बोला—तुम लोग अपने-अपने बेटों के बारे में चाहे जो कहो, मेरी राय में इन तीनों में केवल एक ऐसा है जिसे बेटा कहा जा सकता है। पहले दो तो अपनी-अपनी मां के पेट से निकलकर उससे बहुत दूर हो गए हैं। तीसरा शरीर से भिन्न होकर भी मां के मन से अपने मन को मिलाए हुए है। जिसमें आत्मीयता है, उसीको मैं सपूत मानता हूं।

दोनों स्त्रियों के मुंह छोटे होकर गर्दनों से इस तरह लटक गए जैसे पेड़ से चिमगादड़। तीसरी स्त्री का मुंह पूर्णमासी के चांद की तरह ऊपर उठने लगा।

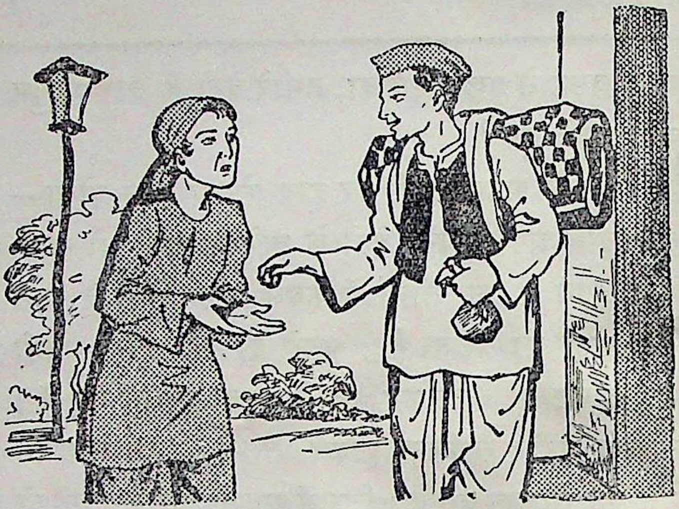

: २ :

धन तुम्हारे पास है

एक परदेशी कुछ धन कमाकर अपने घर लौट रहा था। रास्ते में उसे एक ठग मिला। ठग ने पूछा—भाई साहब, कहां जा रहे हो ? परदेशी ने कहा—मैं परदेश कमाने गया था ; अब लौटकर अमुक गांव को अपने घर जा रहा हूं।

ठग ने उसकी कमाई को हड़पने का निश्चय करके कहा—मित्रवर, मुझे तो उस गांव से भी आगे जाना है ; आओ साथ-साथ चलें ; बातों से रास्ता जल्दी कट जाता है।

गांव दूर था। परदेशी भी एक साथी पाकर प्रसन्न हुआ। दोनों बातें करते हुए आगे बढ़े। ठग उसके धन को टटोलता हुआ तरह-तरह की पेंचदार बातें करने लगा। उसने पता लगा लिया कि इसकी कमाई का सब कुछ किसी पोटली में इसके पास ही है। चलते-चलते शाम हो गई। दोनों एक धर्मशाला में ठहर गए। वहां खा-पीकर ठग ने अपने साथी से कहा—मित्रजी, यह स्थान बहुत सुरक्षित है; हम लोग गाढ़ी नींद सोकर थकावट मिटाएंगे।

इसके बाद मीठी-मीठी बातें करता हुआ वह इस विचार से आंख मूंदकर बनावटी खर्राटे लेने लगा, जिससे साथी को उसकी नीयत पर किसी तरह का सन्देह न हो। थोड़ी देर में परदेशी भी स्वाभाविक नींद सो गया। उसे सोते देखकर ठग चुपचाप उठकर उसका गट्ठर टटोलने लगा। गट्ठर के बाद उसने जेब भी टटोली, लेकिन कहीं एक पैसा भी हाथ नहीं लगा। वह निराश होकर सो गया।

दूसरे दिन दोनों फिर आगे बढ़े। रास्ते में ठग ने पूछा—दोस्त, इतने दिन परदेश रहे, लेकिन मालूम होता है वहां सिलसिला ठीक नहीं बैठा। कुछ कमा-

धमाकर लौट रहे हो कि योंही खाली हाथ ?

परदेशी ने कहा—भाई, जो सौ-पचास मिल गए उन्हींको लेकर एक बार बाल-बच्चों से मिलने के लिए जल्दी ही जा रहा हूं।

अब ठग को विश्वास हो गया कि इसके पास सौ-पचास कहीं न कहीं अवश्य हैं। शाम को वे दूसरी धर्मशाला पहुंचे। वहां भी धूर्त लच्छेदार बातें करता हुआ नींद का नाटक करने लगा। उसके बाद परदेशी सो गया। उसके सोने पर ठग ने बड़ी सावधानी से टटोलना शुरू किया। बहुत खोजने पर भी कहीं कुछ नहीं मिला। उसे विश्वास हो गया कि परदेशी के पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है; वह शान दिखाने के लिए योंही झूठी बातें बनाता है।

तीसरे दिन सवेरे दोनों आगे बढ़े। ठग किसी बहाने उसका साथ छोड़ना चाहता था, इतने में परदेशी का घर आ गया। वहां पहुंचकर परदेशी ने अपने गट्ठर में से एक पोटली निकाली जिसमें दो सौ रुपये बंधे थे। उसे खोलकर उसने उसमें से दो रुपये ठग को देते हुए कहा—साथी, अभी तुम्हारा रास्ता लम्बा है; इन रुपयों से रास्ते में कुछ खा-पी लेना।

ठग आंखें फाड़-फाड़कर उस पोटली को देखने लगा। जिसे वह रास्ते में अच्छी तरह खोजने पर भी नहीं निकाल पाया था, वही उसीके सामने उसी गट्ठर में से निकली। वह अपने आश्चर्य को छिपा नहीं सका और बोला—परदेशी अब तो तुम सकुशल अपने घर पहुँच गए। एक बात बता सको तो मुझे बता दो।

परदेशी ने कहा—पूछो।

ठग—तुम इस पोटली को यात्रा में रोज़ रात को कहां छिपा देते थे ?

परदेशी—क्यों ?

ठग—मैं ठगों का गुरु हूं, राह चलते बड़े-बड़ों की जेब काट लेता हूं। तुम्हारे साथ मैं तुम्हारे धन के लोभ से चला था। जब तुम धर्मशाला में मेरी बगल में खाट बिछाकर लेटते थे तो मैं सोने का बहाना कर तुम्हारे सो जाने की प्रतीक्षा करता था। उस समय मैं देखता था कि तुम लेटने के बाद फिर खाट पर से उठकर कहीं गए भी या नहीं। फिर भी तुम्हारे सो जाने पर मैं तुम्हारी तलाशी लेता था तो कहीं कुछ नहीं मिलता था। पिछली रात में मैंने इस गट्ठर को अच्छी तरह देखा था। तब इसमें यह

पोटली नहीं थी। यह बताओ कि तुम इसे कैसे छिपा देते थे ?

परदेशी मुस्कराकर बोला—यह प्रतिज्ञा करो कि तुम आगे से अब दूसरों के धन पर हाथ न लगाओगे तो मैं अपना रहस्य बता दूंगा।

ठग ने ठगी छोड़ने की प्रतिज्ञा की। तब परदेशी ने कहा—ठगराज, मुझे तुम्हारी बातों से पहले ही तुम्हारे ऊपर सन्देह हो गया था। इसलिए मैं अपना धन तुम्हारे पास ही सुरक्षित रूप में रख देता था। मैं जानता था कि तुम रात-भर जागोगे इसलिए कोई तीसरा उसे नहीं चुरा सकेगा।

ठग चौंककर बोला—यह कैसे ?

परदेशी—लेटने पर मैं चुपके से अपनी पोटली तुम्हारे सिरहाने रख देता था। मैं जानता था कि तुम धन को मेरे पास खोजने का यत्न करोगे, लेकिन इसका तुम्हें स्वप्न में भी ध्यान न आएगा कि वह तुम्हारे ही पास है। तुम अपनी ओर दृष्टि न डालकर मेरी छानबीन में ही पड़े रहते थे। मनुष्य की यह दुर्बलता है कि वह निकट की वस्तु की उपेक्षा करके दूर की वस्तु पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है। धन को अपने पास खोजने की अपेक्षा वह व्यर्थ ही

दूसरे के पास खोजता है।

ठग अपना सिर पीटकर बोला—हाय, मैं ही ठगा गया ; जिस अमूल्य वस्तु को मैं बाहर खोजता था, वह वास्तव में मेरे पास थी लेकिन मुझे इसका पता नहीं था।

परदेशी ने कहा—मित्र, अब पछताना व्यर्थ है। धन को दूसरों के पास न खोजकर अपने पास खोजो। धन पुरुषार्थ में है। तुम सचाई से मेहनत करो तो तुम्हारी जेब रोज़ भरी हुई ही मिलेगी।

ठग उसके उपदेश को मानकर कमाने चला गया।

: ३ :

हाथ-पैर भी चलाइए

एक बार एक पंडितजी अपना पोथी-पत्रा लिए हुए कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक नदी मिली। बरसात के कारण वह उमड़कर बह रही थी। किनारे पहुंचकर पंडितजी ने देखा कि एक नाव बंधी थी। और मल्लाह उतरनेवालों की प्रतीक्षा कर रहा था। उन्होंने मल्लाह से कहा—भाई, हमें आवश्यक काम से उस पार जाना है, इसलिए जल्दी पहुंचा दो।

मल्लाह ने कहा—जब तक काफी उतरनेवाले

न इकट्ठे हो जाएं तब तक आपको अकेले ले चलने में क्या लाभ ! यदि हम आपको अकेले ले चलें तो आप हमें उतराई के अतिरिक्त और क्या देंगे ?

पंडितजी बोले—पंडित के पास ज्ञान के अतिरिक्त और होता ही क्या है ! हम तुम्हें दो-चार अच्छी बातें बता देंगे ।

मल्लाह ने सोचा कि संभव है, पंडितजी कुछ काम की बातें बता दें, जिससे आगे जीविका चले । उसने नाव खोल दी । बीच नदी में पहुंचने पर उसने कहा—पंडितजी, अब हमें वे बातें बता दो ।

पंडितजी सिर खुजलाते हुए बोले—अच्छा, यह बताओ मल्लाहराम, तुम कुछ पूजा-पाठ जानते हो ?

मल्लाह बोला—नहीं महाराज, हम तो बचपन से इसी काम में लगे हैं ।

पंडितजी—तो पहली बात मैं तुम्हें यह बताता हूं कि तुम्हारे जीवन का एक-तिहाई भाग व्यर्थ गया । अब यह बताओ कि कुछ हिसाब-किताब जानते हो ?

मल्लाह—नहीं ।

पंडितजी—राम, राम, तुम्हारे जीवन का एक-

तिहाई भाग और निष्फल हो गया। अब बचा एक बटे तीन भाग...

पंडितजी उसके शेष जीवन को भी नष्ट करने जा रहे थे, इतने में नाव एक चट्टान से टकराकर टूट गई। पंडितजी पानी में डूबने-उतराने लगे। मल्लाह ने तैरकर उनको पकड़ा और पूछा—महाराज, तैरना जानते हो ?

पंडितजी—नहीं भाई, तैरना तो नहीं जानता।

मल्लाह ने कहा—तब तो आपका सारा जीवन व्यर्थ गया।

पंडितजी अपने बचाव के लिए उससे प्रार्थना करने लगे। चतुर मल्लाह ने उन्हें पकड़कर बड़े यत्न से पार पहुंचा दिया और विदा करके कहा—पंडितजो, जिस ज्ञान से मनुष्य आत्मोद्धार न कर सके वह निष्फल है। जीभ के साथ-साथ पैर चलाना भी सीखिए।

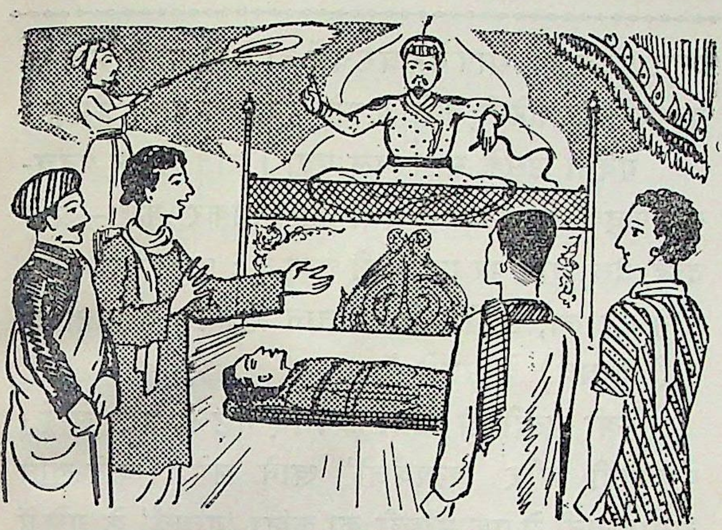

: ४ :

सत्य का प्रभाव

बंगाल में एक साधारण गृहस्थ रहता था। उसका नाम था पंचकौड़ी दे। उसकी स्त्री को गाने-बजाने का बड़ा शौक था। एक दिन पंचकौड़ी काम से कहीं बाहर गया। शाम को घर लौटते समय उसे एक गवैया मिला, जो एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ मधुर स्वर में मृदंग बजाकर गा रहा था। वह मुग्ध होकर वहीं बाजा सुनने लगा। थोड़ी देर बाद जब गवैया गा-बजा चुका तो पंचकौड़ी उससे बोला—भाई, आप तो साक्षात् गन्धर्व

जान पड़ते हैं; आप मेरे घर चलें तो मेरी पत्नी आपका बड़ा सत्कार करेगी, क्योंकि उसे संगीत से बहुत प्रेम है।

गवैया उसके साथ चल पड़ा। रात में घर पहुंचकर पंचकौड़ी ने अपनी स्त्री को बुलाकर कहा—अरी दौड़, देख, द्वार पर गन्धर्वजी आए हैं; पहले कुछ खाने-पीने को ला, उसके बाद ये तान छेड़ेंगे। ये हाहा-हूहू (दो गन्धर्व) के साथी हैं।

स्त्री जल्दी ही दोनों के लिए मछली-भात लाई। पंचकौड़ी और 'गन्धर्वजी' खाने लगे। खाते-खाते असावधानी से एक मछली का कांटा 'गन्धर्व' के गले में अटक गया और उसकी सांस बन्द हो गई। देखते-देखते उसका सारा शरीर ठण्डा पड़ गया और वह उखड़े हुए पेड़ की तरह गिर पड़ा। पंचकौड़ी घबरा गया। उसने सोचा कि कल इसको मरा देखकर लोग यही कहेंगे कि मैंने जान-बूझकर इसकी हत्या की है; और परिणाम यह होगा कि नवाब की अदालत में मुझे मृत्यु-दण्ड मिलेगा। अपनी मौत की घड़ियां गिनता हुआ वह भय से कांपने लगा। कुछ न सूझता था कि क्या करे! एकाएक उसके मन में विचार आया कि इसको किसी सुयोग्य वैद्य के पास ले चलना चाहिए; संभव है, वह कोई संजीवनी बूटी पिलाकर इसे जिला दे।

अंधेरी रात में वह कंधे पर अपने गंधर्व को लादे हुए नगर के सुप्रसिद्ध वैद्य भीमनागजी के घर पहुंचा। शव को सीढ़ियों पर रखकर वह वैद्यजी को पुकारने लगा। बहुत पुकारने पर भी वैद्यराज बाहर नहीं आए क्योंकि वे गाढ़ी नींद में सोते हुए स्वप्न में किसी असाध्य रोगी का इलाज कर रहे थे और उससे दूनी फीस मांग रहे थे। बहुत चिल्लाने के बाद भीतर से एक दासी निकली। पंचकौड़ी ने उसको पांच रुपये दिए और कहा कि वैद्यजी को जगाकर कह दो कि मैं एक काल के गाल में पड़े हुए रोगी को लाया हूं। दासी अन्दर चली गई। इधर पंचकौड़ी ने मन में सोचा कि कहीं भीमनाग ने इसकी जांच कर ली तो वह अदालत में गवाही देगा कि मैंने ही इसे मारा है। इस विचार के आते वह गंधर्व की लाश वहीं सीढ़ी पर छोड़कर अपने घर भाग गया। वैद्यजी थोड़ी देर में बाहर निकले। बाहर घोर अंधकार था। उस अंधेरे में उनके पैर की ठोकर से मुर्दा लुढ़कता हुआ नीचे जा रहा। वैद्यजी ने घबराकर लालटेन जलाई और उसके पास जाकर देखा तो उसके प्राण-पखेरू उड़े हुए थे। उन्होंने सोचा कि उनके पैर की ठोकर से ही निर्बल रोगी लुढ़ककर मरा है। उन्हें भी शंका हुई कि सवेरे वे हत्या के अपराध में पकड़े जाएंगे।

आधी रात को नागजी भी अपने सिर से उस बला को टालने के लिए किसी अभागे की खोज में चले। उन्हें दूर नहीं जाना पड़ा। पास ही कालीपद चक्रवर्ती का बगीचा था। उसमें चुपके से घुसकर नागजी ने उस शव को नीबू के पेड़ के सहारे खड़ा कर दिया। कालीपद उस दिन किसी मित्र के यहां दावत खाने गया था। रात में वह लौटा तो सामने नीबू से सटा हुआ आदमी का शरीर दिखाई पड़ा। कालीपद कई दिनों से इस ताक में था कि रात में कौन उसके नीबू तोड़ ले जाता है। आज उसने समझा कि चोर मिल गया। वह उसपर तड़ातड़ लाठियां बरसाने लगा। शव ज़मीन पर गिर पड़ा। खूब पीटने के बाद उसको पहचानने के लिए कालीपद घर से लालटेन लाया। देखा तो उसकी सांस बन्द थी। अब उसे भी आशंका हुई कि लाठी की पहली ही चोट से उस चोर के प्राण निकले हैं और हत्या के अभियोग में उसे फांसी के तख्ते पर चढ़ना होगा। चक्रवर्ती को काटो तो लहू नहीं। रातों-रात अपना पाप दूसरे के सिर मढ़ने की फिक्र में वह लाश को उठाए हुए बाहर निकला। थोड़ी दूर पर पंडित फणिभूषण भटट्ाचार्य का घर था। कालीपद उस मुर्दे को उन्हीं के दरवाज़े के सहारे खड़ा करके

25625

अपने बगीचे में भाग आया ।

वृद्ध फणि बाबू रोज़ सवेरे चार बजे हाथ में एक मोटा सोंटा लेकर टहलने जाते थे । उस दिन उन्होंने ज्योंही दरवाज़ा खोला, त्योंही उसके सहारे खड़ा किया हुआ मुर्दा उनके ऊपर गिर पड़ा । फणिभूषण ने समझा कि वह कोई चोर-बदमाश है, जो ज़बर्दस्ती घर में घुसना चाहता है । वे उसपर सोंटे बरसाते हुए चिल्लाने लगे—दौड़ो, दौड़ो, गुण्डे का बाप आया है, गला घोंटने-वाला घर में घुस आया है, छुरा मारना चाहता है । अड़ोसी-पड़ोसी और सिपाही लोग भट्टाचार्य की पुकार सुनकर जमा हो गए। तब भी वे सोंटे पर सोंटा बरसाते ही रहे । बड़ी कठिनाई से सिपाहियों ने उनका हाथ पकड़ा और पड़े हुए व्यक्ति को पहचानकर कहा—अरे, यह तो लुच्चा नहीं, बल्कि मुरलीमनोहर मजूमदार नामक गवैया है, तुम जान-बूझकर इसको मार रहे हो । उन्होंने देखा तो मजूमदार के शरीर में प्राण ही नहीं था । तुरन्त ही हत्या के अपराध में भट्टाचार्यजी पकड़-कर कोतवाली ले जाए गए । सबने यही समझा कि उन्हीं के मारने से बेचारा मजूमदार मरा है । स्वयं भट्टाचार्य ने भी अपने को ही दोषी समझा ।

इस घटना की खबर सारे शहर में बिजली की

तरह फैल गई। बेचारे फणिभूषण को पकड़कर नवाब साहब की कचहरी में लाया गया। सैकड़ों-हज़ारों आदमी, जिनमें दे, नाग और चक्रवर्ती भी थे, मामले का फैसला सुनने के लिए जुट आए। नवाब के सामने बूढ़े भट्टाचार्य ने अपना अपराध स्वीकार किया। नवाब ने न्यायानुसार प्राणदंड का निर्णय सुना दिया। निर्णय सुनते ही भट्टाचार्य का छोटा बच्चा बाप के पैर से लिपटकर बोला—दादा, हमें किसके भरोसे छोड़े जाते हो! भट्टाचार्य ने आंख में आंसू भरकर कहा—बेटा, संसार में एक भगवान ही है जो तुम्हारे जैसे अनाथों की रक्षा करता है; संकट में उसीको पुकारना। दीन-दुखियों का वही अन्तिम सहारा है।

यह दृश्य देखकर कालीपद चक्रवर्ती के मन में बड़ी ग्लानि हुई। उसने सोचा कि मेरे अपराध के कारण यह निर्दोष व्यक्ति तो दंड पा ही रहा है, इसका बच्चा भी सदा-सर्वदा के लिए अनाथ हो रहा है। किसीने उसके मन से कहा कि तुम्हें एक दिन इस पाप का भयंकर दण्ड भोगना पड़ेगा। चक्रवर्ती अपने को संभाल नहीं सका। उसने आगे बढ़कर नवाब से कहा—सरकार, मजूमदारा का हत्यार मैं हूं। यह मेरे बगीचे में नीबू चुराने गया था, इसलिए मैंने

इसको बुरी तरह पीटा । जब यह मर गया तो प्राण-दंड के भय से मैंने इसके शव को भट्टाचार्य के दरवाज़े पर खड़ा कर दिया था । दरवाज़ा खोलने पर शव भट्टाचार्य के ऊपर गिरा और धोखे में उन्होंने उसको डंडों से पीटा है ।

नवाब की आज्ञा से तुरन्त कालीपद को हथकड़ी पहना दी गई और फणिभूषण मुक्त कर दिए गए। जो दंड फणिभूषण के नाम सुनाया गया था, वही कालीपद चक्रवर्ती के नाम सुना दिया गया । कालीपद की इस सचाई और निर्भीकता का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा । भीमनाग वैद्य भी मन ही मन उसके लिए धन्य-धन्य कहकर अपने को धिक्कारने लगे । उन्होंने सोचा कि असली मारनेवाला तो मैं हूं और सज़ा एक निर्दोष व्यक्ति पा रहा है । उन्हें भय हुआ कि मरने पर प्रेत होकर वह कई जन्मों तक उन्हें सताएगा । वे लपककर सामने आए और नवाब को सारी घटना सुनाकर बोले—श्रीमान, मुझे दोहरा मृत्युदंड दीजिए, क्योंकि एक तो मैंने अपनी ठोकर से मजूमदार को मारा, दूसरे चक्रवर्ती जैसे निरपराध को व्यर्थ के लिए फंसाया ।

कालीपद मुक्त कर दिया गया और भीमनागजी

बांध दिए गए। अब पंचकौड़ी दे से न रहा गया। उसकी आत्मा सत्य को प्रकट करके आत्मबलिदान के लिए उसे प्रेरित करने लगी। वह निर्भय होकर नवाब के सामने गया और सारा हाल सुनाकर बोला—न्यायाधीश, मैंने जान-बूझकर इसकी हत्या नहीं की है; लेकिन यदि आप मेरी बात को असत्य मानकर इसे हत्या ही मानते हैं, तो प्राणदंड मुझे ही दीजिए! इससे मेरी आत्मा को सन्तोष होगा, नहीं तो मैं जीते-जी नरक का कष्ट भोगूंगा।

नवाब ने नागजी को मुक्त करते हुए कहा—पंचकौड़ी सत्य कहता है, क्योंकि वह मृत्यु से निर्भय होकर सारा अपराध अपने ऊपर लेने को भी तैयार है।

मजूमदार के गले को खोलकर देखा गया तो सचमुच उसमें मछली की हड्डी अटकी थी। न्यायालय से पंचकौड़ी भी मुक्त कर दिया गया। सत्य ने एक-एक करके चारों की जानें बचाईं।

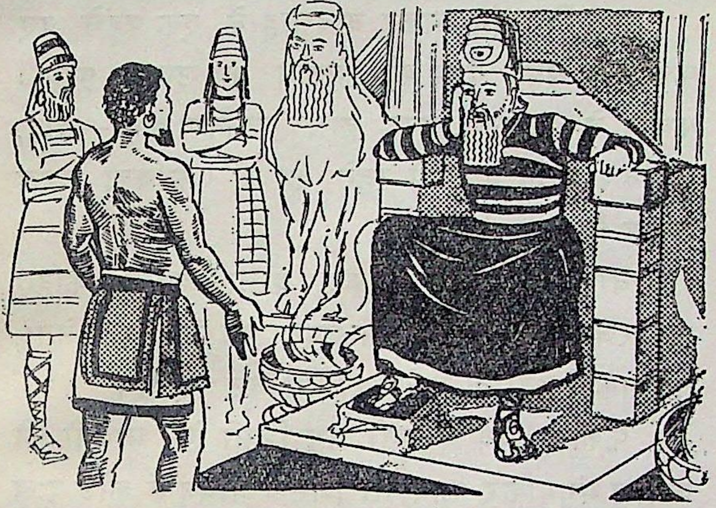

: ५ :

सुखी होने का उपाय

किसी समय फारस देश में एक शक्तिशाली बादशाह राज्य करता था। उसके पास किसी वस्तु की कमी नहीं थी, फिर भी वह अपने जीवन से सुखी नहीं था। वह सुखी होने के अनेक उपाय करता था, लेकिन एक न एक दुःख उसे घेरे ही रहता था। हकीम लोग शाह के शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए उसे प्रतिदिन अमूल्य औषधियां देते थे, लेकिन कोई न कोई बात या व्याधि ऐसी हो जाती थी जिससे उसके जीवन की शांति भंग हो जाती थी।

एक दिन तंग आकर बादशाह ने एक पहुंचे हुए फकीर से अपने दुःख को मिटाने का उपाय पूछा। फकीर ने उसका सारा हाल जानकर कहा—शाह, पूर्ण रूप से नित्य सुखी रहने का तो एक बड़ा सरल उपाय है।

बादशाह उत्सुक होकर बोला—कहिए, कहिए फकीरजी, जब तक मैं उस उपाय को जान नहीं लेता, तब तक बेचैनी के मारे मेरा दम घुट रहा है।

फकीर—धैर्य से सुनो, तुम किसी ऐसे आदमी की कमीज़ मंगवाकर पहन लो जिसके जीवन में कोई दुःख न हो, अर्थात् जो बिलकुल संतुष्ट हो।

ऐसा सरल उपाय जानकर बादशाह प्रसन्न होकर बोला—बाबा, एक क्या, मैं एक लाख ऐसी कमीज़ें मंगवाकर अपने खज़ाने में या मालखाने में अथवा तहखाने में रखवा लूंगा। संसार में सुखी होने की आपने यह बड़ी सस्ती दवा बता दी है।

शाही आज्ञा से सैकड़ों आदमी ऐसी कमीज़ों की खोज में चारों ओर दौड़ाए गए। सबको सावधान कर दिया गया कि अच्छी तरह जांच-पड़ताल करके देख लेना कि कमीज़वाले के जीवन में राई-भर भी दुःख न हो, नहीं तो कमीज़ पहनने का पूरा आनन्द न मिलेगा।

राजकर्मचारियों ने सारा फारस देश छान डाला लेकिन एक भी ऐसा व्यक्ति न मिला जिसे कोई न कोई कष्ट न हो। बहुत-से धनकुबेर मिले, लेकिन उनमें से किसीको भूख न लगने का कष्ट था, किसी-को सन्तान-कष्ट था और किसीको धन-रक्षा की घोर चिन्ता थी। अनेक विद्वान मिले, लेकिन उनमें से बहुतों को धन-कष्ट था, बहुतों को इसका कष्ट था कि उनका लड़का नालायक है और बहुतों को परलोक की विशेष चिन्ता थी। कोई ज्ञान के कारण दूसरों की मूर्खता देखकर दुःखित था और कोई अज्ञानवश अकारण शोकमग्न था। अधिकांश लोग किसी न किसी शारीरिक व्याधि से पीड़ित थे। जो शरीर से हृष्टपुष्ट थे, वे किसी न किसी मानसिक क्लेश में फंसे थे। इस प्रकार सारा संसार ही दुःख-मय था। शाही दूत दौड़-धूप करके हताश हो गए। वे बादशाह को निराशा का समाचार सुनाने के लिए लौट पड़े।

सभी मुंह लटकाए चले आ रहे थे। इतने में दूर से उनके कानों में बांसुरी की मीठी ध्वनि सुनाई पड़ी। कुछ राजकर्मचारीगण थकावट मिटाने के लिए बजानेवाले के पास जाकर बैठ गए। बजानेवाला एक

चरवाहा था जो मौज से टीले पर बैठा हुआ अपनी भेड़ों को चरा रहा था। राजदूतों ने देखा तो वह हृष्ट-पुष्ट और निश्चिंत दिखाई पड़ा। उन्होंने पूछा—क्यों भई, तुम्हें कोई दुःख है ?

वह बोला—कैसा दुःख ? मुझे न कोई रोग है न फिक्र—हंसी-खुशी अपना काम करता हूं और जो रूखा-सूखा भगवान की कृपा से मिल जाता है, उसे खाकर गाढ़ी नींद में सो जाता हूं।

शाही नौकरों को मानो गड़ा हुआ खज़ाना मिल गया। वे उसे लेकर बादशाह के पास पहुंचे और बोले—जहांपनाह, बहुत खोजने पर सुख की यही एक बूटी मिली है।

बादशाह खुशी से उछल पड़ा। उसने चरवाहे से कहा—तेरी रोज़ पहनने की कमीज़ कहां है ? उसे लाकर मुझे दे दे और बदले में मुझसे दौलत लेकर मौज कर।

चरवाहे ने हंसकर कहा—शाहंशाह, मेरे पास तो कोई कमीज़ ही नहीं है। मैं तो इसी प्रकार बिना कमीज़-कोट के हंसते-हंसते जाड़ा, गरमी, बरसात बिता देता हूं।

बादशाह चौंककर बोला—कमीज़ के बिना तू

कैसे चैन की बंसी बजाता है ?

चरवाहा स्वाभाविक सरलता से बोला—हुज़ूर, कमीज़ तो शरीर पर पहनी जाती है और प्रसन्नता चित्त में रहती है। दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है। जिसका हृदय हंसता हो, उसकी आंखों को बाहर से कौन रुला सकता है !

बादशाह को कमीज़ तो नहीं मिली लेकिन सुखी होने का उपाय मालूम हो गया। वह समझ गया कि आनन्द बाहरी साधनों से नहीं, बल्कि मन की सरलता और सहनशीलता से मिलता है। उस दिन से उसने दुःखों में उलझना छोड़ दिया। उसके चित्त की व्यग्रता मिट गई और वह सचमुच सुखी हो गया।

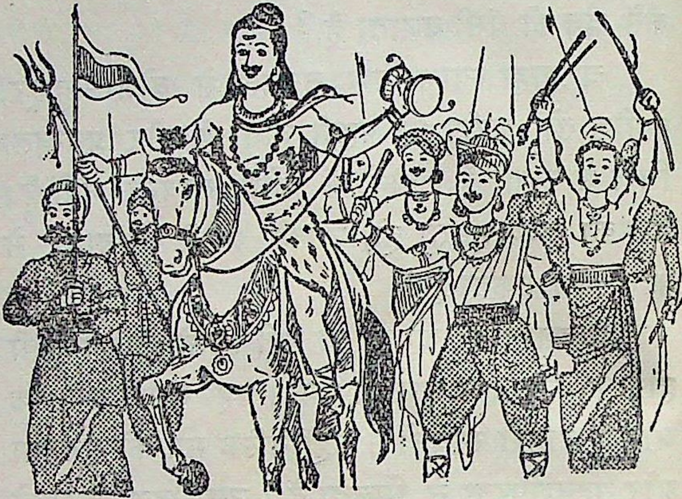

: ६ :

पराक्रम दिखाओ

बहुत दिनों की बात है। इसी देश में एक बड़ा ही ईश्वर-भक्त राजा रहता था। उसे पूजा-पाठ में आवश्यकता से अधिक विश्वास था। काम-धाम छोड़कर वह दिन-भर शिव-मन्दिर में बैठकर 'बम्-बम् महादेव' चिल्लाता रहता था। एक दिन उसने सोचा कि यदि सारी प्रजा इसी तरह भगवान की उपासना करने लगे तो हमारा देश स्वर्ग हो जाएगा। बस, फिर क्या था! सारी प्रजा के नाम तुरन्त आज्ञा निकाल दी गई कि सब लोग अन्य काम छोड़कर प्रतिदिन मन्दिरों में बैठे-बैठे

घंटा, करताल, शंख बजाकर धूमधाम से शिवशंकर का पूजन करें।

उन दिनों राजा की आज्ञा भगवान की आज्ञा मानी जाती थी। उसे कौन टालता ! सब लोग काम-काज छोड़कर झांझ, मजीरा, डमरू, मृदंग लेकर 'हर-हर महादेव' के नारे लगाने लगे। जहां देखिए वंहीं सौ-दो सौ की टोली बैठी कीर्तन करती मिलती थी। सेना के शूरवीर ढाल-तलवार फेंककर जगह-जगह कंठी पहन-कर बैठ गए। धीरे-धीरे देश का सारा कृषि-व्यवसाय, कला-कौशल चौपट हो गया, क्योंकि इन कामों के लिए किसीके पास समय नहीं था। सबके सब तो पुजारी बन बैठे थे।

एक विदेशी राजा को यह सब मालूम हुआ। उसने अच्छा अवसर देखकर पुजारी राजा पर चढ़ाई कर दी। जब उसकी सेना सीमाप्रान्त में घुस आई तो सारी प्रजा घबरा गई। शत्रु से लोहा लेने के लिए इधर सेना की एक टुकड़ी भी नहीं थी। सैनिक लोग तो तब तक महन्त बन गए थे।

हमारे राजाजी नहीं घबराए। उन्होंने प्रजा को आदेश दिया कि घबराने की कोई बात नहीं है, आंख मूंदकर मन्दिरों के आसपास बैठ जाओ, भजन गाओ,

भगवान स्वयं भक्तों का उद्धार कर देंगे ।

जनता हाहाकार मचाती हुई प्रलयंकर भगवान को पुकारने लगी । वैरी-दल कुछ ही दिनों में राजधानी के सामने आ पहुंचा । शाम हो गई थी, भक्त लोग गला फाड़-फाड़कर रुद्र भगवान को उठने के लिए पुकार रहे थे । लेकिन वे हिलते तक न थे । दूसरे दिन देश की पराजय निश्चित थी । राजा को तो लोग असमर्थ मान चुके थे, लेकिन भगवान में सबका भरोसा था ।

पुजारी राजा रात में अपने महल में लेटा हुआ था । संकट उसके सिर पर आ पहुंचा था । इसलिए वह उसके सम्बन्ध में अपनी बुद्धि से विचार करने लगा । उसने सोचा कि भगवान अब सहायता करने नहीं आएंगे, इसलिए हमें स्वयं शत्रु से भिड़ना चाहिए । फिर उसे ध्यान आया कि अपने पास न तो सेना है, न हथियार; और अब जनता इतनी जल्दी भक्ति-भाव त्यागकर लड़ने के लिए तैयार नहीं हो सकती । क्षण-भर के लिए निराश होकर उसने फिर सोचा कि यदि देवता के मुख से इन भक्तों को देश के लिए मर-मिटने की बात कहला दी जाए, तो सब तैयार हो जाएंगे ।

राजा महल से चुपचाप आकर राजमन्दिर की विशाल शिव-मूर्ति के पीछे आकर बैठ गया और वहीं से हुंकार करके बोला—मेरे भक्तो, यह पूजा-पाठ का समय नहीं, शस्त्र उठाओ और पुरुषार्थ करो।

भक्तों ने भगवान की जय-जयकार करके कहा—हे देव-देव, शीघ्र रुद्र-रूप धारण कीजिए या दुर्गाजी को हमारे उद्धार के लिए भेज दीजिए।

फिर आकाशवाणी हुई—मनुष्यो, तुम स्वयं रुद्र-रूप धारण करो। जैसे मैं शान्ति के समय शिव और क्रांति के समय रुद्र बन जाता हूं, वैसे ही तुम भी बनो। मेरे भक्त होने का सच्चा प्रमाण दो।

मनुष्य बोले—हे नाथ, हम लोग तपस्वी होकर अब हथियार कैसे उठाएं! हमारे हथियार भी तो टूट-टाट गए हैं।

पुनः आकाशवाणी हुई—मनुष्यो, उसी प्रकार हथियार उठाओ, जैसे मैं योग के बाद त्रिशूल उठाता हूं, जैसे तपस्वी राम ने रावण के विरुद्ध, महर्षि परशुराम ने क्षत्रियों के और गुरु द्रोण ने पांडवों के विरुद्ध उठाया था। जो भी हथियार तुम्हारे पास हैं, उन्हें लेकर निर्भय कर्मक्षेत्र में जाओ और कर्तव्य करो।

भक्तों ने कातर होकर कहा—देवाधिदेव, हम

शास्त्री लोग शस्त्र चलाना क्या जानें ; आज आप ही हमारी पूजा से प्रसन्न होकर हमारे शत्रुओं को भस्म कर दें ।

देवध्वनि आई—कायरो, या तो शीघ्र उठो, नहीं तो मैं तुम्हें ही पहले भस्म करता हूं ।

भगवान के कोप का सामना कौन करता ! चारों ओर यह बात फैल गई कि स्वयं भगवान ने सबको शत्रु से लड़ने को कहा है। जिसको जो हथियार मिला उसीको लेकर वह रात्रि ही में शत्रु-सेना से लड़ने चल पड़ा । सबसे आगे तिलकधारी ब्राह्मणों का दल चला । चतुर शत्रुओं ने उन्हें दूर से आते देखकर मशालों की रोशनी में पहचान लिया कि वे ब्राह्मण हैं। सारे शत्रु-सैनिक हथियार दूर रखकर उनके सामने दंडवत् प्रणाम करने लगे । पंडितों ने चिल्लाकर उन्हें चिरंजीव होने का आशीर्वाद दिया । तब शत्रुओं ने कहा—हे महाराजो, आपका वचन कैसे सत्य होगा जबकि आप लोग स्वयं हमारे यमदूत बनकर आ रहे हैं। हम आपको मारकर ब्रह्म-हत्यारे नहीं बनेंगे, इसलिए आइए, अपने कर्मों से अपने ही आशीर्वाद को झूठा प्रमाणित कीजिए ।

ब्राह्मणों ने आपस में कहा—भाई, ये लोग तो

ठीक कहते हैं। किसीको आशीर्वाद देकर उसका अहित करना तो अधर्म है। ब्रह्मवाक्य अब मिथ्या नहीं हो सकता।

वे लोग आशीर्वाद देकर लौट आए। शत्रु लोग निश्चिन्त होकर विश्राम करने लगे।

राजमन्दिर में आकर ब्राह्मणों ने शिवजी को सारा हाल सुनाया। मूर्ति में से फिर ध्वनि आई—ब्राह्मणो, तुमने महामूर्खता की है। हाथ में शस्त्र लेने पर सब क्षत्रिय हो जाते हैं। क्षत्रिय का धर्म है—शत्रु का नाश करना। वह आशीर्वाद नहीं देता। जाओ, क्षत्रिय बनकर लड़ो—शत्रु पर दया दिखाना कायरता ही नहीं, अपराध भी है।

ब्राह्मण लोग बोले—भगवान, हम चले जाएंगे तो आपको भोग कौन लगाएगा! अब हमें अपने पास ही रखिए और क्षत्रियों को भेज दीजिए। हम आपको चरणों के पास ही मुक्ति पाना चाहते हैं। फिर 'हर-नाद' हुआ—कापुरुषो, चलो हम स्वयं तुम्हारे राजा के रूप में तुम्हारी सहायता के लिए चलते हैं, तुम लोग घड़ी-घंटे-ढोल बजाते हुए हमारी जय गाते हुए चलो। अपने-अपने हथियार उठाओ और हमारे ऊपर भरोसा करके शत्रु का संहार करो। जो हमारे सामने मरेगा,

उसे हम सीधे शिवलोक को भेज देंगे।

महादेव का सहारा पाकर सब लोग 'हर-हर महादेव' कहते हुए दूने उत्साह से लड़ने को तैयार हो गए।

उधर पुजारी राजा चुपचाप मूर्ति के पीछे से निकलकर अपने महल में जा पहुंचा। वहां उसने बाघ का चर्म पहना, हाथ में डमरू, त्रिशूल लिया। जटा पहले से ही बढ़ी थी। इसके बाद फिर आकर मूर्ति के पीछे छिप गया। जब बाहर लाखों लोग गाजे-बाजे के साथ तैयार हो गए, तो वह बम्-बम् कहकर डमरू बजाता हुआ निकला। भक्त-सेना ने अपने परमात्मा का दर्शन-पूजन किया। इसके बाद सबके सब घण्टे टनटनाते, शंख बजाते, ढोल ढमढमाते और भगवान प्रलयंकर का जयगान करते उनके साथ उन्मत्त होकर वीर-पूजा के लिए दौड़ पड़े।

शत्रुओं ने भयंकर कोलाहल सुना। वे शंकित होकर सोचने लगे कि पहले जो तिलकधारी लोग आए थे, वे भारतीय राजा के भेदिये थे—असली सेना अब आ रही है। सहस्रों घण्टों का नाद सुनकर उन्होंने समझा कि यह हाथियों की महासेना आ रही है और उन्हीं के घण्टे बज रहे हैं। एकसाथ हज़ारों ढोलकों की गड़गड़ाहट को उन्होंने जुझाऊ बाजा समझा।

शत्रु राजा को विश्वास हो गया कि भारतीय राजा के पास सुसज्जित चतुरंगिणी है। उनके डेरे में खलबली मच गई। इतने में प्रलयंकर-दल धूल उड़ाता और समुद्र की तरह हहराता हुआ शत्रु के सिर पर जा धमका। शत्रु लोग सवेरा होने के पहले ही अपने हाथी, घोड़े, रथ और अस्त्र-शस्त्र छोड़कर जिधर से आए थे उसी ओर को जान लेकर भागे। भारतीय लठैतों ने पहले तो उनके सामान पर अधिकार किया, इसके बाद तुरन्त उन्हीं के रथों और हाथी-घोड़ों पर बैठकर उन्हीं के अस्त्र-शस्त्रों को लेकर उन्होंने उनका पीछा किया। पीछे-पीछे असंख्य पैदल भी बढ़े। अपने तेज़ घोड़े पर बैठकर भागते हुए शत्रुराज ने पीछे मुड़कर देखा तो देशी राजा की सेना आंधी-तूफान की तरह वेग से दौड़ी आ रही थी। सबके आगे एक त्रिशूलधारी जटा खोले हुए ललकारता और हुंकार करता हुआ दौड़ा आ रहा था। शत्रु की सारी सेना को भारतीय वीरों ने खदेड़-खदेड़कर मार डाला। केवल विदेशी राजा अफगानिस्तान, फारस, अरब होता हुआ जहां से आया था वहीं को भाग गया।

भारतीय दल विजयी होकर राजधानी में आया। वहां सब लोग अस्त्र-शस्त्र फेंककर पुनः शिव-पूजा में

मग्न हो गए। उन्हें यह विश्वास हो गया कि एकमात्र भगवान की कृपा से ही देश का उद्धार हुआ है। तब राजा ने सारा भेद खोलकर कहा—मनुष्यो, हमारे लिए भगवान लड़ने नहीं आए थे। उन्होंने समय पर हमें सद्‌बुद्धि दी, जिसकी प्रेरणा से हम लोग अपने पराक्रम द्वारा विजयी हुए हैं।

प्रजा ने कहा—महाराज, आप चाहे जो कहें, हम लोग पराक्रम से नहीं, पूजा से जीते हैं। हम लोग अब पूजा ही करेंगे। सब रोगों की वही एक दवा है।

राजा ने कहा—तुम लोग भूलते हो, पूजा से देवता और सज्जन ही वश में आ सकते हैं। दुष्ट शत्रु की पूजा शस्त्र से ही होती है। जहां पूजा की आवश्यकता हो, वहां पूजा करो और जहां पराक्रम दिखाने की आवश्यकता हो, वहां पराक्रम दिखाओ, तभी सिद्धि मिलती है। देवता की उपासना करते हुए भी अपने पुरुषार्थ को मत त्यागो। मेरे द्वारा भगवान ने तुम्हारे लिए यही संदेश कहलाया है। जाओ, अपने-अपने कर्म करो और जीवन के सभी क्षेत्रों में यथाशक्ति पराक्रम दिखाओ।

सब लोग पुरुषार्थ-पराक्रम का प्रत्यक्ष परिणाम देख

चुके थे। उन्होंने निश्चय किया कि समय पर प्रतिदिन भगवान की पूजा करके सब अपने-अपने काम में लग जाएंगे। वे सावधान होकर पुनः अपना-अपना कर्तव्य-कर्म करने लगे। इससे शिवजी को भी प्रसन्नता ही हुई होगी, क्योंकि उनके सिर से निकम्मे अन्धभक्तों को उबारने का भार उतर गया।

: ७ :

धैर्य का पुरस्कार

बहुत दिन हुए, काशी में एक शक्तिशाली राजा राज करता था। उसकी सुसज्जित सेना के सामने कोई राजा-महाराजा सिर उठाने का साहस नहीं करता था।

उन दिनों कोसल में एक निर्बल राजा गद्दी पर था। काशीराज ने उसपर चढ़ाई करके उसका राज्य छीन लिया। कोसलराज अपनी रानी के साथ वन में भाग गया और वहीं किसी प्रकार जीवन बिताने लगा। कुछ समय बाद रानी के गर्भ से

वन में ही एक राजकुमार उत्पन्न हुआ। निर्वासित राजा ने उसका नाम रखा विजय। विजय धीरे-धीरे युवक हुआ। कोसलराज उस समय तक वृद्ध और जर्जर हो चुका था। मरने के पहले उसने अपने पुत्र को पास बुलाया और कहा—बेटा, अब मैं तुमसे अन्तिम विदा ले रहा हूं, मेरे पास कोई ऐसी सम्पत्ति नहीं जिसे मैं तुम्हारे लिए छोड़ जाऊं। केवल एक सम्पत्ति है, उसे संभालने का वचन दो तो मैं उसे देकर शान्तिपूर्वक इस लोक से विदा लूं।

विजय ने कहा—पिताजी, आप जो भी मुझे देंगे, मैं जीवन-भर उसकी रक्षा करूंगा।

कोसलराज—पुत्र, उस धन का नाम है धैर्य। यह मेरे जीवन की अमूल्य सम्पत्ति है। किसी भी अवस्था में इसे न त्यागना।

यह कहते-कहते राजा का गला रुक गया। उसका शरीर ठंडा हो गया। विजय ने उसका अन्तिम संस्कार किया। इसके बाद वह अपनी मां के साथ काशी की ओर चल पड़ा। काशी की सीमा पर पहुंचते ही रानी ने कहा—बेटा, इस राज्य में न चलो।

विजय—क्यों ?

रानी—बेटा, यह तुम्हारे पिता के शत्रु का राज्य

है। तुम इस रहस्य को नहीं जानते। सुनो, वास्तव में हम लोग वनवासी नहीं हैं। तुम्हारे पिता कोसल के महाराजा थे। तुम्हारे जन्म के पहले ही क्रूर काशी-नरेश ने हमारा राजपाट छीनकर हमें वन में खदेड़ दिया था। तब से हम लोग दुःख-अपमान सहते हुए अपना जीवन बिताते रहे। अब तुम्हारे पिता की मृत्यु के बाद उनके शत्रु के राज में जाना मुझे अच्छा नहीं लगता।

विजय को पहले-पहल मालूम हुआ कि वह वास्तव में कोल-भील नहीं, बल्कि कोसल का युवराज है। उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह अपने पिता के शत्रु से बदला लेकर ही रहेगा। मां के मना करने पर भी वह हठ करके उसके साथ काशी की राजधानी में पहुंचा। वहां उसने राजा के अस्तबल में नौकरी कर ली। साईसी करते हुए भी वह अपने शत्रु से बदला लेने की युक्ति सोचता रहता था।

एक दिन वह काम से छुट्टी पाकर अस्तबल में बैठा गा रहा था। उधर से काशीराज घूमता हुआ आया। उसकी दृष्टि उस सुन्दर युवक पर पड़ी। राजा ने उसका गाना भी सुना। उसने उसे शिक्षा दिलाकर अपने रथ का सारथी बना लिया। विजय

बड़ी चतुराई से रथ चलाने लगा।

राजा एक दिन दल-बलसहित शिकार के लिए निकला। विजय ही उसका रथ चला रहा था। रथ जब बीच जंगल में पहुंचा तो वह उसे तेज़ी से हांकने लगा। परिणाम यह हुआ कि दल-बलवाले पीछे छूट गए और खूब हवा लगने से राजा को रथ में ही नींद आ गई। विजय उसे सोता देखकर सीधा रास्ता छोड़कर रथ को घुमाता-फिराता दूसरे रास्तों पर ले चला। एकान्त में पहुंचते ही उसके मन का वैर भड़क उठा। शत्रु से बदला लेने के लिए ही वह उसे उसके रक्षकों से दूर भगा लाया था।

विजय ने रथ खड़ा कर दिया। इसके बाद सोते राजा का सिर काटने के लिए उसने हाथ में तलवार उठाई। वह तलवार खींचकर राजा के सिर पर मारने ही जा रहा था, इतने में उसे अपने पिता का अन्तिम वाक्य याद आया। उसने हाथ रोक लिया। इतना सुन्दर अवसर पाकर उसका मन बार-बार उससे कहता था कि एक वार में शत्रु से पूरा बदला ले लो, लेकिन भीतर ही भीतर कोई कहता था कि और तुम्हारे पिता की अन्तिम आज्ञा है कि किसी भी अवस्था में धैर्य न त्यागना।

विजय ने पिता के अन्तिम वचन का मान रखना ही अपना कर्तव्य समझा। उसने तलवार उठाकर रख दी। राजा स्वप्न में यह सब देख रहा था। जागते ही उसने विजय से स्वप्न का सारा हाल कहा। विजय ने अपने मन का सारा भेद उससे बताकर कहा—राजा, तुम्हें यदि शक्ति का अभिमान हो तो हाथ में तलवार लेकर नीचे उतर आओ, आज निर्णय हो जाएगा कि कौन सच्चा शूर है।

राजा ने उसे गले से लगाकर कहा—कोसलपति, तुमने मुझपर विजय पा ली है, अब मैं युद्ध करने में समर्थ नहीं हूं। इस सुनसान जगह में सोते हुए पाकर भी तुमने मुझे नहीं मारा, यह तुम्हारी बड़ी भारी वीरता है। मैं तुम्हारा ऋणी हूं, क्योंकि तुमने मुझे प्राणदान दिया। मेरे अपराधों को क्षमा करो और चलकर अपने पिता का राज भोगो।

दोनों लौट पड़े। काशीराज ने सम्मानपूर्वक विजय को कोसल के सिंहासन पर बिठा दिया।

: ८ :

लोकनायक कौन होगा ?

सैकड़ों वर्ष पहले गुजरात में एक बड़ा ही योग्य शासक था। उसके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिए एक दिन उसने जनता के सामने यह प्रस्ताव रखा कि राज्य में जो सबसे अधिक बुद्धिमान मिले उसीको युवराज बना लेना चाहिए, यह बात सबको पसन्द आई।

बुद्धिमानी की परीक्षा के लिए एक दिन नियत किया गया। राजा ने यह घोषणा करवा दी कि जनता

में से चुने हुए तीन ऐसे ही चतुर व्यक्ति इस प्रतियोगिता में भाग लें जो अलग-अलग आकाश, पृथ्वी या जल की श्रेष्ठता सिद्ध कर सकें। जो अपने विषय को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित कर देगा, वही राजा के बाद लोकनायक होगा। जनता में से एक महापंडित तो यह साबित करने को तैयार हुए कि पृथ्वी श्रेष्ठ है; दूसरे धुरंधर विद्वान जल की महिमा प्रमाणित करने को तैयार हुए। एक नवयुवक ने कहा कि मैं इन दोनों की अपेक्षा आकाश को अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर दूंगा।

परीक्षा के दिन राजमहल के आगे बुद्धि-वीरों का युद्ध देखने के लिए लाखों की भीड़ जमा हो गई। सबसे पहले पृथ्वीवाला पहलवान आगे आया। उसके साथ हीरे-सोने के ढेर, बड़े-बड़े गजराज, बढ़िया घोड़े, फूलों के गुलदस्ते, फल-मेवे, रंग-बिरंगी चिड़ियों के झुंड, तरह-तरह के अन्न और पृथ्वी पर प्राप्त होने-वाले अनेक अमूल्य पदार्थ थे। उसने सबको राजा के आगे रखकर कहा—महाराज, रत्नवती के ये रत्न आपको सादर समर्पित हैं। इन्हें देखकर आप स्वयं वसुन्धरा महारानी की महिमा का अनुमान कर सकते हैं।

इसके बाद पानी-प्रशंसक अकड़ता हुआ सामने

आया और राजा के चरणों पर ढेर के ढेर मोती, मूंगे, शंख, हंस, कमल आदि रखकर बोला—हे नर-रत्न, रत्नाकर की ओर से यह रत्न-राशि की भेंट स्वीकार कीजिए। साथ ही गंगाजी का यह सुधा-जल भी लीजिए। इसको पीकर नरक के कीड़े भी बैकुण्ठवासी हो जाते हैं। इन वस्तुओं को आप पानी की तरह नहीं बहा सकते। इनका मूल्य आंकिए तो मेरा मूल्य आपको सहज में ही मालूम हो जाएगा।

अंत में तीसरा प्रतियोगी मैदान में उतरा। उसके पास कुछ नहीं था। राजा ने उसे देखकर कहा—तू बिना हथियार के इस लड़ाई के मैदान में क्यों आया? तेरे पास कुछ भेंट देने को भी नहीं है।

वह बोला—राजन्, मेरा हथियार और मेरा उपहार आप लोगों के सिर पर है। जो प्रत्यक्ष है, उसके लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता! मेरा रत्न वह सूर्य है जिसे सब दिनमणि कहते हैं। उसे मैं आपको भेंट नहीं कर सकता, क्योंकि वह लोक की सम्पत्ति है—उसपर गरीब-अमीर सबका बराबर अधिकार है। वह परमात्मा का प्रत्यक्ष रूप है। उसके बिना पृथ्वी और समुद्र की सृष्टि नहीं चल सकती। जिस अनन्त की आत्मा इतनी प्रबल और भव्य है, उसकी

बराबरी पृथ्वी और सागर कैसे करेंगे। उसीकी खिड़की से तो इस संसार में स्वर्ग का प्रकाश पहुंचता है। उसी आकाश में वह वायु रहती है जिससे जगत् का जीवन चलता है। उसी आकाश में पृथ्वी को पानी देनेवाले बादल रहते हैं। समुद्रसहित पृथ्वी उसीके एक कोने में चक्कर लगाती है। मेरे पास आपको देने के लिए केवल यही ज्ञान है, और कुछ नहीं। इसको लेकर आप स्वयं निर्णय कीजिए कि पृथ्वी श्रेष्ठ है या सागर अथवा हज़ारों-लाखों पृथ्वियों और सागरों का धनी यह भगवान का धाम।

राजा-प्रजा ने एक स्वर से उस युवक को विजयी घोषित कर दिया। स्वर्ण-रत्न की अपेक्षा उसकी ज्ञान-भेंट कहीं अधिक मूल्यवती थी।

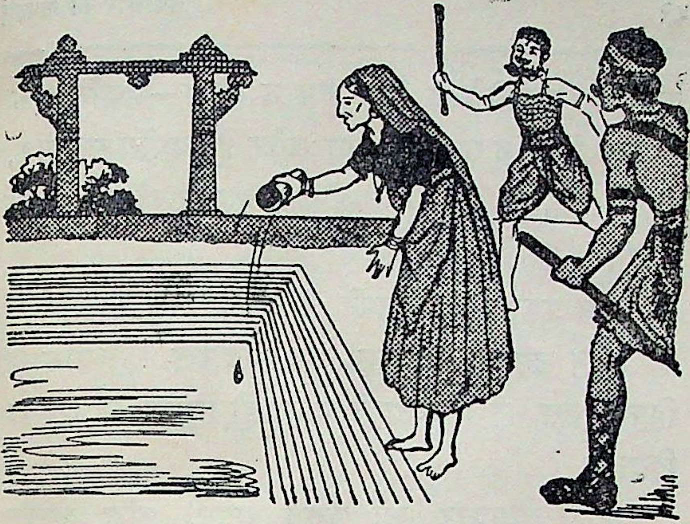

: ६ :

सच्ची भेंट

प्राचीन काल में एक शिव-भक्त राजा था। एक बार उसपर कोई बहुत बड़ा संकट पड़ा। उसने शिवजी से प्रार्थना की—हे किलकिल, कपर्दी, तुटितुट, जोटिंग, जटी, त्रिजटी, धूर्जटी, इस विपत्ति से उबारिए, तो मैं ग्रापके मन्दिर के सामने एक बड़ा भारी सागर बनवाकर उसे प्रत्येक सोमवार को दूध से लबालब भरवा दिया करूंगा। हे कैलासनाथ, इतना दूध ग्रापके लिए, श्रीमान तारकारि (कार्तिकेय) ग्रौर भैया पुष्टि-कान्त (गणेश) जैसे लम्बोदर के लिए तथा मैया

कुंडाजी (पार्वती) के लिए कम न होगा—अर्थात् एक सप्ताह में भी न समाप्त होगा; और हे स्वर्गीय सरकार, आपके सांप तो उसको पी-पीकर अजगर जैसे मोटे हो जाएंगे।

इस प्रकार उस सनकी ने बड़ी देर तक प्रार्थना की। हम उसकी बातें कहां तक याद रखें! संयोग से विपत्ति टल गई। राजा ने शीघ्र ही महासागर बनवा दिया।

पहले सोमवार को उसने अपनी पांच हज़ार गायों का दूध उसमें डलवाया, किन्तु तालाब नहीं भरा। आधे घण्टे में वह सूख भी गया। तब राजा ने सारी प्रजा को अपनी-अपनी गाय-भैंसों का दूध लाकर उसमें डालने को कहा। अगले सोमवार को लाखों आदमी उसमें दूध डाल गए, लेकिन सागर नहीं भरा। देखते ही देखते उसमें जितना दूध पड़ा था, सब सूख गया।

तब राजा ने झुंझलाकर प्रजा के नाम कड़ा आदेश निकाला कि कोई एक बूंद दूध भी अपने किसी घरेलू काम में न लाकर रोज़ सुबह-शाम अपना-अपना दूध इसमें डाल जाया करें। लोगों पर निगरानी रखने के लिए राजकर्मचारी नियुक्त कर दिए गए।

वे लोग गरीबों को मार-पीटकर उनके जानवरों का दूध सागर में डलवाने लगे। राजा सोचता था कि सबका पुण्य उसीको मिलेगा।

बहुत प्रयत्न करने पर भी सागर नहीं भरा। दूध न मिलने के कारण राज्य में बहुत-से दुधमुंहे बच्चे, निर्बल बुड्ढे और रोगी प्रतिदिन मरने लगे। राजा के सिपाहियों का इतना आतंक था कि कोई अपने मरते हुए बाप को भी एक बूंद दूध देने का साहस नहीं कर सकता था। पुण्यों के धोखे में राजा पाप बटोरने लगा।

एक दिन एक गरीब बुढ़िया अपने घर से ज्योंही दूध का गिलास लेकर तालाब की ओर चली, उसका साल-भर का नाती दूध के लिए मचल पड़ा। बुढ़िया का हृदय उमड़ आया। किसीने उसकी आत्मा से कहा— यह तो इस निर्बल बच्चे का दूध है, संसार के स्वामी शिव को दूध की क्या कमी ! बुढ़िया ने साहस करके आधा गिलास दूध बच्चे को पिला दिया। आधा गिलास लेकर वह शिव-सागर की ओर दौड़ी। रास्ते में उसे एक व्याकुल स्त्री मिली। उसने बुढ़िया को रोककर कहा—माताजी, मेरे पति मौत की घड़ियां गिन रहे हैं, वैद्य ने उन्हें दूध में देने की एक दवा दी है, लेकिन

कहीं दूध नहीं मिल रहा है—दया करो, नहीं तो मेरा संसार उजड़ जाएगा ।

बुढ़िया एक बार तो डरी कि यदि इतना भी दूध न डालूंगी तो सिपाही लोग पकड़कर मारेंगे और घर फूंक देंगे, लेकिन फिर उसे मनुष्यता का ध्यान आया । सामने खड़ी स्त्री पर उसे करुणा आई । उसने शेष दूध उसे दे दिया । इसके बाद वह खाली गिलास लेकर सागर के पास पहुंची । वहां उसने उसे अपने अंचल से ढंक लिया और धीरे-धीरे किनारे जाकर दिखाने के लिए उस छूंछे गिलास को सागर पर उंडेल दिया । उसमें से एक बूंद दूध टपक पड़ा । राजा के सिपाहियों ने देख लिया कि वह छल कर रही है । उन्होंने झपटकर उसे पकड़ लिया और मारना शुरू कर दिया ।

उसी समय वह तालाब अपने-आप दूध से भर गया और उमड़कर चारों ओर बहने लगा । राजकर्म-चारी यह कौतुक देखकर दंग हो गए । राजा ने भी समाचार सुना । वह दौड़ता हुआ वहां आया । सिपा-हियों ने उसे बताया कि अभी तो उस धूर्त बुढ़िया ने केवल एक बंद दूध डाला है ।

राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । उसने

शिव की मूर्ति के आगे हाथ जोड़कर कहा—हे महोदर (शिव), लाखों मन दूध से आज तक तुम्हारा पेट नहीं भरा था, आज इस कंगालिन के एक बूंद दूध से यह अजीर्ण कैसे हो गया ?

पता नहीं शिव की मूर्ति ने या भीतर से उसकी आत्मा ने ही कहा—राजा, आज हम पुण्य की भेंट पाकर तृप्त हो गए हैं। तुम हमें अपने सारे वैभव से, पाप-अत्याचार की कमाई से संतुष्ट करने का प्रयत्न व्यर्थ कर रहे थे। मैं तो उससे क्रुद्ध होकर सारे दूध को जला देता था। आज एक पुण्यात्मा की भेंट से करुणा-सागर उमड़ पड़ा है।

राजा फिर बोला—हे भगवान, क्या मेरे लाखों मन दूध का मूल्य उस दीन बुढ़िया की एक बूंद से भी कम है ?

उसे फिर परमात्मा की ध्वनि सुनाई पड़ी—राजा, हम मनुष्य की भेंट को लोहे के मन से नहीं, मन के मन से तोलते हैं। दरिद्र की गाढ़ी कमाई का एक पैसा हमारे लिए कुबेर के कोष से भी अधिक मूल्यवान है—अमूल्य है।

राजा अपनी भूल समझ गया। उसने बुढ़िया को मुक्त करके अत्याचार बन्द कर दिया। उसे विश्वास

हो गया कि भगवान ऊपरी साधनों से नहीं रीझते, उन्हें तो दया, प्रेम, करुणा, त्याग, परोपकार से ही प्रसन्न किया जा सकता है।

एक बूंद में उसे छिपा हुआ सागर मिल गया।

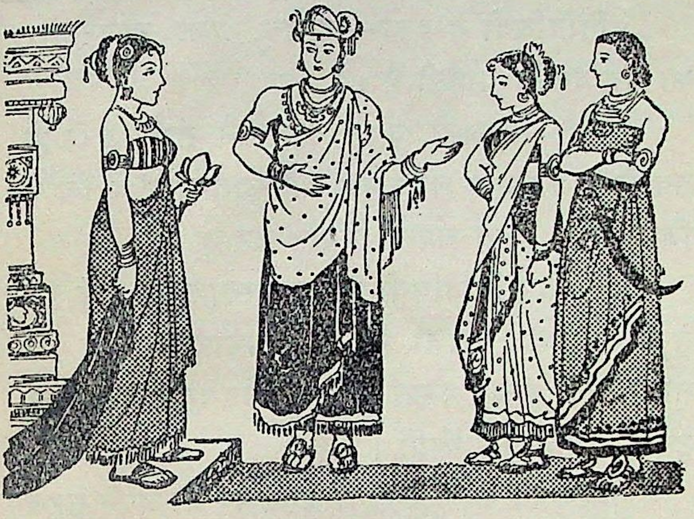

: १० :

स्वभाव की परीक्षा

एक लोकप्रिय राजा था। जनता उसे बहुत मानती थी क्योंकि वह शासक होकर भी सब काम प्रजा की सम्मति से ही करता था। राजा का विवाह नहीं हुआ था। एक दिन प्रजा के कुछ प्रतिनिधियों ने राजा से मिलकर निवेदन किया—महाराज, आपके राज्य में हम लोगों की सारी कामनाएं पूरी हो गईं, केवल एक शेष है।

राजा बोला—कहो, कहो, वह भी पूरी हो जाएगी।

प्रतिनिधियों ने कहा—राजन्, प्रजा राजकुमार का मुंह देखना चाहती है।

राजा—सज्जनो, यह इच्छा तो तभी पूरी हो सकती है जब आप लोग मुझे यह स्वतन्त्रता दें कि मैं जिससे चाहूं उससे अपना विवाह कर लूं।

प्रजा के प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव को बड़े हर्ष से मान लिया। राजा ने एक साधारण गृहस्थ की सीधी-सादी सुन्दर कन्या को चुनकर शुभअवसर पर उससे विवाह कर लिया।

गृहस्थ की कन्या ने रानी बनने पर भी अपने सरल स्वभाव को नहीं छोड़ा। राज्य राजा के हाथ में था और राजा रानी के हाथ में, फिर भी रानी के मन में तनिक भी अहंकार नहीं हुआ। थोड़े ही दिनों में उसने अपने सद्व्यवहार से छोटे-बड़े सबको मुग्ध कर लिया।

कुछ दिनों में रानी के गर्भ से कुमार का तो नहीं, एक कुमारी का जन्म हुआ। राजा को यह प्रिय नहीं लगा, क्योंकि उसे और उसकी प्रजा को राजकुमार की आवश्यकता थी। राजकन्या जब साल-डेढ़ साल की हुई तो राजा ने उसे निर्दयता से रानी की गोद से छीनकर कहीं बाहर भेज दिया।

रानी ने पूछा—महाराज, आपने यह क्या किया ?

राजा बोला—मैं उसका मुंह नहीं देखना चाहता था, क्योंकि उसने मेरी आशाओं को मिट्टी में मिला दिया। इसलिए मैंने उसे जंगल में बाघ के सामने फिकवा दिया है। यदि इसके लिए तुम मुझसे रुष्ट हो, तो मुझे छोड़कर यहां से अभी जहां चाहे वहां जा सकती हो।

रानी को घोर दुःख तो था ही, फिर भी वह नम्रता के साथ बोली—स्वामी, वह आपकी सम्पत्ति थी। उसको रखने या फेंकने का आपको पूरा अधिकार था। उसके लिए मैं अपने पत्नी-धर्म को क्यों छोड़ूं!

इस घटना के बाद भी रानी के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। कुछ दिनों में उसने एक राजकुमार को जन्म दिया। राजा ने दो-तीन साल बाद उसे भी पकड़वाकर कहीं दूर भिजवा दिया। रानी ने इसका रहस्य पूछा तो वह रुखाई से बोला—वह बालक मुझे पसन्द नहीं था। मैं तो एक सुन्दर राजकुमार चाहता था, इसलिए मैंने उसको भी शेर के सामने फिकवा दिया है। तुम्हें यदि मेरे व्यवहार से कष्ट है, तो तुम अभी मेरा साथ छोड़ सकती हो।

रानी ने अभिमान के साथ उत्तर दिया—स्वामी, आप क्या कहते हैं! कोई आर्य-कन्या भी विवाह

के बाद अपने पति से अलग होती है ? विधाता सबको अलग-अलग बनाता है, लेकिन हमारा धर्म दो भिन्न प्राणियों को भी मिलाकर सदा-सर्वदा के लिए एक कर देता है। यहीं तो भगवान पर मनुष्य को सच्ची विजय मिली है। मैं धर्म के इस पवित्र बन्धन को नहीं तोड़ सकती।

राजा चुप हो गया, लेकिन इसके बाद वह रानी से विरक्त रहने लगा। इसी प्रकार तेरह-चौदह साल बीत गए। रानी ने अपने प्रेम व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आने दिया। एक दिन राजा ने उसे बुलाकर कहा—देखो जी, हमने दूसरा विवाह करने का निश्चय कर लिया है। अब तुम रानी का पद छोड़कर अपने बाप के घर जाकर रहो। तुम्हारे यहां रहने से नई रानी को कष्ट हो सकता है।

रानी रोने लगी। राजा ने उसे ज़बर्दस्ती उसके बाप के घर भिजवा दिया। इस कार्य से सारी जनता को दुःख हुआ, परन्तु राजा ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह राज्य के बाहर गया और कुछ ही दिनों में एक नई स्त्री को साथ लेकर लौटा। राज्य-भर में यह बात फैल गई कि राजा नई रानी ब्याह कर लाया है। नई रानी के स्वागत में राजभवन में रात में एक बड़ा भोज दिया

गया। उसमें राजा ने पुरानी रानी को नई रानी के सेवा-सत्कार के लिए बुलवाया। वह बड़ी प्रसन्नता से आकर अपने स्वामी के सामने खड़ी हो गई। राजा ने घुड़ककर उससे कहा—देख री, ये तेरी महारानी हैं; तू खिलाने-पिलाने के काम में चतुर है, इसलिए इनकी सेवा के लिए मैं तुझको नियुक्त करता हूं।

पुरानी रानी ने हर्षपूर्वक इस आज्ञा को स्वीकार किया। उसने बड़े आदर से नई रानी को भोजन कराया। राजा बराबर उसके मुंह की ओर देखता था। उसपर न उदासी थी, न ईर्ष्या। थोड़ी देर बाद राजा ने उससे अकेले में पूछा—कहो, हमारी रानी कैसी है?

भूतपूर्व रानी बोली—महाराज, ईश्वर इनका कल्याण करे! ये साक्षात् देवी हैं, राज्यलक्ष्मी हैं, इनके चरणों की दासी बनने में मैं अपना अहोभाग्य समझती हूं।

राजा ने तिरस्कार के साथ फिर पूछा—तेरी जैसी कंगाल तो नहीं हैं? तुझसे तो अच्छी तरह हैं कि नहीं?

भूतपूर्व रानी—महाराज, रास्ते के कंकड़ और खरीदे हुए हीरे की क्या बराबरी? कहां मैं गरीब की बेटी और कहां ये राजा की कन्या। ये बड़े बाप की बेटी हैं, सुख में पली हैं, शरीर-मन दोनों से सुकुमार

हैं। इसलिए मेरी आपसे प्रार्थना है कि इनकी बहुत संभाल रखिएगा।

राजा आंख निकालकर बोला—क्या बकती है ? कुछ समझ में नहीं आता।

भूतपूर्व रानी—महाराज, मेरा मतलब यह है कि इनकी भी दशा यही न हो जो मेरी हुई है। मैं दीन घर की कन्या हूं, इसलिए कष्ट और अपमान का ध्यान नहीं करती। नई महारानी धनी घर की हैं, इसलिए वे सहनशील न होंगी। आप कोई ऐसा कार्य न कीजिएगा जिससे इनके कोमल चित्त को किसी प्रकार की चोट पहुंचे।

राजा की आंखों में आंसू छलछला आए। उसने उठकर उस सती को गले से लगा लिया और कहा—महारानी ! जिस देश, जिस जाति और जिस पुरुष के पास तुम्हारी जैसी सुशीला नारी हो, उसकी मर्यादा कभी नष्ट नहीं हो सकती। तुम्हें मैं अधिक से अधिक कष्ट देकर भी आज हार गया और तुम अपनी सहनशीलता से इस समय जीतकर खड़ी हो। साधारण स्त्रियों की भांति तुम सौत से डाह नहीं करतीं और मेरे सारे अपराधों को भूलकर भी मेरे लिए मन में सद्भाव ही रखती हो ! तुम्हारे इस स्वभाव की मैं

वन्दना करता हूं। भगवान सबको ही ऐसा स्वभाव दे।

इसके बाद राजा ने 'नई रानी' से कहा—बेटी, अपनी मां के पैरों पर गिरो और बगल के कमरे से अपने छोटे भाई को बुला लाओ।

पास के कमरे से एक सुन्दर बालक आया। राजा ने असली रानी के पैरों पर उसे भी गिराकर कहा—ये दोनों तुम्हारे बच्चे हैं। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए इन्हें अब तक दूर रखकर पढ़ाया-लिखाया है। देखो, ये कितने सुन्दर हैं। गृहलक्ष्मी! ये तेरे दिए हुए वरदान हैं।

रानी गद्गद होकर बच्चों से लिपट गई। अंधी को मानो दो आंखें मिल गईं। प्रजा के झुलसे हुए हृदयस्थल पर मानो सावन-भादों की वर्षा होने लगी।

: ११ :

पैसे की मौत

एक बार दो विद्वान मित्रों में पैसे के विषय में वाद-विवाद हुआ। एक ने कहा कि बटोरने से धन बढ़ता है। दूसरे ने कहा—नहीं, ठीक काम में लगाते रहने से वह अपने-आप बढ़ता रहता है और बटोरकर गाड़ देने से मुर्दा हो जाता है। दोनों ने निश्चय किया कि किसी दरिद्र व्यक्ति को कुछ पैसे देकर देखना चाहिए कि उसको बटोरकर धनी बना रहता है या खर्च करके फिर गरीब बन जाता है।

दोनों ढूंढ़ते-ढूंढ़ते एक महादरिद्र के पास आए। पहले ने उसे दो सौ रुपये देकर कहा—लो जी, इसको संभालकर रखना ; जब तक ये तुम्हारे पास रहेंगे, तब तक तुम धनी बने रहोगे।

दरिद्र को मानो कुबेर का कोष मिल गया। वह सोचने लगा—इसको कहां रखूं, बक्स भी नहीं है; घर में रखना ठीक नहीं, क्योंकि चोरों के हज़ार आंखें होती हैं। बहुत चिन्ता करने के बाद उसने उसको सिर-दर्द की तरह पगड़ी में लपेट लिया। उसमें से वह एक पैसा भी खर्च नहीं करता था, क्योंकि उसे भय था कि खर्च होते ही उसकी रईसी खतम हो जाएगी। दिन-रात वह दरिद्र अपनी पगड़ी ही टटोलता रहता था, तथा उसकी रखवाली में वह रात-भर जागता था, इस कारण बेचारा दरिद्र पहले से भी अधिक दुर्बल हो गया।

एक दिन वह किसी मित्र के यहां से अपने लड़के के खाने के लिए एक रोटी मांगकर घर की ओर आ रहा था, इतने में एक चील उसको छीनने के लिए झपटी। दरिद्र ने चील के झपट्टे से रोटी बचा ली। वह दुबारा झपटी। इस बार भी वह रोटी न पा सकी, लेकिन उसके पंजे में फंसकर दरिद्र की पगड़ी

आकाश में पहुंच गई। गरीब हाथ मलकर रह गया। पगड़ी के साथ उसकी जमापूंजी भी चली गई।

कुछ दिनों के बाद दोनों विद्वान उस दरिद्र की दशा देखने के लिए उसके पास आए। वह पहले से भी बुरी हालत में था। उसके लटकते हुए मुंह से सारा हाल सुनकर पहला पंडित बोला—इसमें इसका क्या दोष ? अभाग्य से इसकी पगड़ी के साथ सारे रुपये चले गए, नहीं तो यह सम्पन्न होता। दूसरा बोला—यह अभाग्य का खेल नहीं है। धन का यह स्वभाव है कि चलते रहने से वह मनुष्य की तरह जीवित रहता है; गाड़ दिए जाने से मुर्दे की तरह दफना उठता है। जब वह मुर्दा हो जाता है तो उसमें नाश के कीड़े लग जाते हैं। प्राकृतिक नियम यही है कि शव को खाने के लिए गृध्र, सियार, कुत्ते आदि तैयार मिलते हैं। इसी प्रकार बेकार पड़े धन को नष्ट करने के साधन भी अपने-आप जुट जाते हैं।

पहला पंडित बोला—भाई, इस व्याख्यान से क्या लाभ ? इसको हम दुबारा दो सौ रुपये देकर पूंजी-पति बना देते हैं। एक महीने बाद आकर देखना—इसके पास अधिक धन उसी प्रकार आ जाएगा, जैसे एक कौए के पास पचास कौए इकट्ठे हो जाते हैं और

एक बीज के मिट्टी में पड़े रहने से उसी तरह के सैकड़ों अनाज के दाने पैदा हो जाते हैं।

उसने दरिद्र को दुबारा दो सौ रुपये दिए और उनको संभालकर रखने की चेतावनी भी दी। जब वे चले गए तो दरिद्र फिर पहले जैसी चिन्ता में पड़ गया। लक्ष्मी को सिर पर चढ़ाने का दण्ड वह भोग चुका था। इस बार उसने रुपयों को लाकर एक घड़े में रख दिया और ऊपर से भूसी भरकर उस घड़े को चुपचाप घर के एक कोने में रख दिया।

संयोग की बात—एक दिन वह जंगल में घास छीलने गया था। एक तेली तेल बेचता हुआ उसके मुहल्ले में आया। गरीब की स्त्री के सिर में बड़ा दर्द था। उसने सोचा, थोड़ा तेल मिल जाता तो उसको लगाने से कुछ आराम मिलता। घर में पैसा नहीं था, इसलिए वह तेली से बोली—तेलीजी, मुझे एक कुप्पी तेल दे दो, उसके बदले अपने कोल्हू के बैलों को खिलाने के लिए मुझसे एक घड़ा भूसी ले लो। तेली मान गया। कुप्पी-भर तेल देकर उसने भूसी-भरा घड़ा उससे ले लिया।

शाम को दरिद्रराज घर लौटे तो दरिद्रानी ने कहा—आओ, आओ, आज बहुत दिन के बाद घर में तेल के

दर्शन करो, मैं अपने हाथों से तुम्हारे बालों में तेल लगाऊंगी ; पड़ौस की कंघी से उनको संवारकर ठाट से बाज़ार में घूम आओ।

यह कहकर स्त्री पति के सिर में तेल लगाने लगी। पति ने गद्‌गद होकर पूछा—मालूम होता है, आज तेरे बाप के घर से कोई आया था, वही तेल लाया होगा ?

स्त्री बोली—नहीं जी, घर में जो घड़े-भर भूसी बेकार पड़ी थी, उसीको देकर मैंने कुप्पी-भर तेल रामलाल तेली से लिया है।

इसको सुनते ही गरीब छाती पीटकर बोला—अरी, अब सिर दबाना छोड़, मेरी खोपड़ी ठनक रही है।

स्त्री ने कहा—स्वामी, अभी तेल से तरावट आ जाएगी, आपके बाल चमकने लगेंगे।

पति तरावट की आवश्यकता नहीं है, मैं पसीने से तर हो रहा हूं। बाल चमकाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनको मैं अपने हाथों से नोचने जा रहा हूं।

यह कहकर वह अपने घड़े को देखने के लिए दौड़ा। वह सचमुच वहां नहीं था। वह तुरन्त रामलाल

तेली के घर पहुंचा । रामलाल तब तक भूसी बैलों को खिला चुका था, और पराये धन को स्वयं पचा गया था । गरीब सिर धुनता हुआ घर लौट आया ।

कुछ दिनों में दोनों विद्वान फिर उसके पास आए । दरिद्र पश्चात्ताप से और भी दुबला हो चुका था । उसको देखकर पहला पंडित तो चुप रहा, लेकिन दूसरा बोला—मित्र, अब देखो, मैं इसको धनी बना देता हूं । उसने पीने के लिए गरीब से एक लोटा पानी मंगवाया और बदले में जेब से एक पैसा निकालकर उसको दिया और कहा—देखो भाई, यह तो बहुत छोटी रकम है, इसकी फिक्र न करना ; लेकिन इसको फेंकना भी नहीं; किसी अच्छे काम में लगा देना । मैं दुबारा आऊंगा तो तुमको अधिक पैसे दूंगा; यह तो पानी का दाम है ।

दोनों के जाते ही उस दरिद्र के घर पर एक मछुआ आकर बोला—काका, मेरा जाल टूट गया है, उसकी बनवाई के लिए एक पैसा चाहिए; सो तुम एक पैसा उधार दे देते तो मैं जाल बनवाकर मछली फंसाता और पहली मछली तुम्हीं को खाने के लिए दे जाता ।

गरीब चार सौ रुपया गंवा चुका था । उसकी

दृष्टि में एक पैसे के रहने-जाने का कोई हर्ष-शोक नहीं था। उसने सोचा—सौदा बुरा नहीं है; इससे उपकार होगा और बदले में एक मछली भी मिल जाएगी। उसने वह पैसा मछुए को दे दिया। मछुए ने अपना जाल ठीक करवाकर पास की नदी में अपना काम शुरू किया। शाम तक जो मछलियां मिलीं, उनमें से वह पहली मछली अपने दरिद्र साहूकार को दे गया। थोड़ी देर में मछलियां बेचकर उसका पैसा भी वापस कर गया। ब्याजसहित अपनी पूंजी पाकर दरिद्र बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि पैसे का अच्छा उपयोग हुआ; चार सौ रुपये को किसी काम में लगा दिया होता तो अब तक हाथ में हज़ारों आ गए होते।

रात में उसकी स्त्री ने पकाने के लिए मछली को काटना शुरू किया। चीरते ही मछली के पेट से एक चमकदार कांच का टुकड़ा निकला। स्त्री ने उसे अपने बच्चे को खेलने के लिए दे दिया। किसीने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

तीन-चार दिन बाद एक जौहरी उधर से आ निकला। उसकी दृष्टि उस चमकीली वस्तु पर पड़ी, जिसे गरीब का लड़का हाथ में लेकर खेल रहा था। वह लड़के के पास जाकर बोला—बेटा, इसे मुझे दे दे;

मैं तुझे मिठाई खाने के लिए एक रुपया दूंगा।

लड़के ने कहा—नहीं, मैं नहीं दूंगा, मां मारेगी।

जौहरी फिर बोला—भाई, मैं तुझे एक रुपया और दूंगा, उसकी मिठाई अपनी मां को खिला देना; वह खुश हो जाएगी।

लड़का—बाबू बिगड़ेंगे।

जौहरी—अच्छा भाई, मैं तुमको दो रुपये और दूंगा, उसकी मिठाई अपने बाबू को खिला देना; वे बड़े बाबू बन जाएंगे।

दूर बैठा दरिद्र यह सब सुन रहा था। उसने सोचा, अवश्य यह मामूली शीशे का टुकड़ा नहीं है, कोई कीमती रत्न है, तभी यह पारखी जौहरी उसपर लट्टू है। वह उसके पास आकर बोला—भाई साहब, आप तो पूरे ठग हैं जो हीरे को कौड़ी के मोल पर लेना चाहते हैं। हमारे बाप कई पुश्त के जौहरी थे, इसलिए हमें उल्लू न बनाइए, पूरा मूल्य पाकर ही हम इस कीमती चीज़ को बेचेंगे।

जौहरी बोला—अच्छा, भाई, सौ रुपये लेकर सौदा खतम करो; इससे अधिक इसके लिए कोई न देगा।

दरिद्र ने सोचा कि अवश्य ही इसका मूल्य अधिक

है, तभी तो चार रुपये से एकाएक सौ रुपये तक देने को तैयार हो गया। वह बोला—जौहरी, सौ रुपये में सिर फोड़ने के पत्थर मिलते होंगे, कीमती पत्थर नहीं।

जौहरी ने उसका २००) मूल्य लगाया। दरिद्र ने फिर वैसा ही उत्तर दिया। बढ़ते-बढ़ते वह ५०,०००) तक पहुंच गया। तब दरिद्र बोला—देखो भाई, ज़्यादा ठक-ठक न करो; मैं सौ बात की एक बात कहता हूं। यों तो मैं इसको बेचना नहीं चाहता, क्योंकि यह वह रत्न है, जिसको महाराज युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा के सिर में से निकाला था। जब वे परदेश जाने लगे, तो उन्होंने हमारे पुरखे के हाथ बेच दिया था। ऐसी यादगार की चीज़ें मैं बेचूंगा नहीं। लेकिन तुम्हारा मन ललचा गया हो तो एक लाख रुपये देकर इसको ले जाओ। बस, मैं एक जीभ से दो तरह की बातें नहीं करता।

जौहरी ने उसकी बात पर विश्वास किया हो या नहीं, परन्तु उसने यह अवश्य सोचा कि वह हीरा लाख रुपये से कहीं अधिक मूल्य का है। उसने घर से लाख रुपये लाकर उसको खरीद लिया। गरीब ने उस रुपये को गाड़ देने की अपेक्षा किसी काम में लगा देना अधिक

अच्छा समझा। उसने एक पक्का मकान बनवाया, बहुत-से गाय-बैल खरीदे, सैकड़ों बीघे खेत खरीदे और बीसों नौकर-मज़दूर रखकर मेहनत से खेती शुरू कर दी। साथ-साथ उसने कई घरेलू उद्योग-धन्धे भी शुरू कर दिए। उसके घर में पैसे की अखण्ड धारा बहने लगी। धीरे-धीरे वह धनी-मानी हो गया।

दोनों विद्वान मित्र इस बार कई साल बाद लौटे, क्योंकि बीच में एक बीमार पड़ गया था। वहां आने पर न तो वह दरिद्र मिला और न उसका झोंपड़ा दिखाई पड़ा। उसके स्थान पर एक हवेली खड़ी थी और उसमें से चार घोड़ों की बग्घी पर चढ़ा हुआ एक रईस सामने चला आ रहा था। दोनों उसे पहचान न सके, लेकिन उसने उन्हें पहचान लिया। पास आकर उसने दोनों को बग्घी में बिठा लिया और कोठी में ले जाकर अपना सारा वृत्तान्त उनको सुनाया।

पहला विद्वान तो चुप होकर बैठ रहा, लेकिन दूसरा अपने प्रयोग की सफलता पर अभिमान के साथ बोला—मित्र, देखो यह एक पैसे की करामात है। वह इसकी मेहनत की कमाई थी, क्योंकि इसने मुझे पानी पिलाकर उसे पाया था। परिश्रम का पैसा हाथ में आते ही इसके पुण्य जग गए, तभी इसने मछुए का उपकार

करके अपने धन का उपयोग किया। सदुपयोग में पैसा चल पड़ा, अर्थात् उसमें जीवन आ गया। उसके जीवित होने से इसका भाग्य जग गया।

पहला पंडित झेंपकर बोला—भाई, यह कहो कि यह सब भाग्य का खेल है।

दूसरा बोला—नहीं, यह कहो कि यह सब भाग्य की देवी लक्ष्मी का खेल है। वे चंचल हैं; उनको चलना बहुत पसन्द है। जब वे एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुंचती रहती हैं तो प्रसन्न होकर धन की वृद्धि करती हैं। जो उनको रोक देता है उसके पास से वे रूठकर चली जाती हैं। मित्र, पैसा गोल इसलिए बना है कि वह पहिये की तरह चलता रहे। पहिये की गाड़ी पर बैठकर जिस तरह कोई आदमी बहुत दूर तक जा सकता है, वैसे ही चलते हुए पैसे का उपयोग करके वह कहीं से कहीं पहुंच सकता है। मेरी पिछली बात को याद करो—बेकार पड़ा पैसा मर जाता है, व्यापार में लगाया हुआ पैसा क्रियावान हो जाता है। पैसे का हाल बिलकुल आदमी का सा है।

पहला पंडित हार मान गया। भूतपूर्व दरिद्र ने उसके चार सौ रुपये सूद और धन्यवाद सहित वापस करके कहा—पंडितजी, अब आप खा-पीकर अपने

घर पधारें; जब मैं मर जाऊं तो कृपया आकर श्राद्ध आदि करा दीजिएगा। दूसरे पंडित का चरण पकड़कर उसने कहा—पंडितजी, आपसे मैं उऋण नहीं हो सकता; आप मेरे साथ रहकर सब तरह के सुख भोगें और मेरी बुद्धि को जगाकर मुझे आगे चलने का रास्ता बताते रहें।

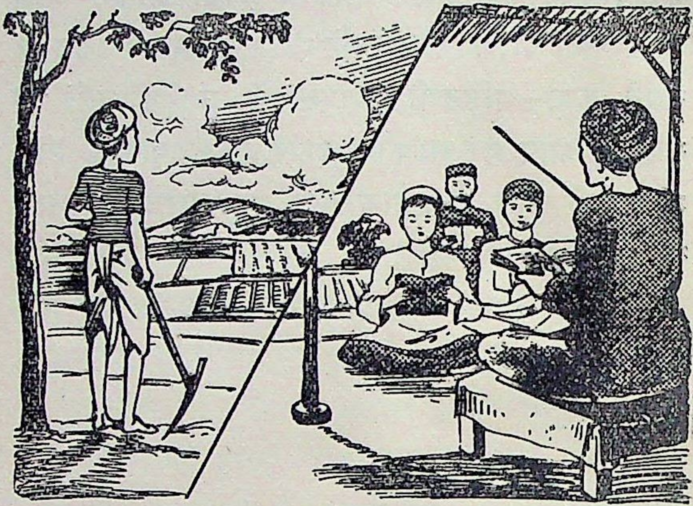

: १२ :

समय की नाप

जयन्त जब विद्यालय से उत्तीर्ण होकर घर जाने लगा तो उसके आचार्य ने कहा—समय को हाथ से न जाने देना, उसको मुट्ठी में पकड़कर काम करोगे तो सदैव सफल होगे।

जयन्त ने पूछा—आर्य, समय कितना बड़ा होता है ?

आचार्य—यह अनुभव करने की बात है। संसार में जाकर स्वयं आंख खोलकर देखो तो पता चल जाएगा। वह अनन्त होते हुए भी छोटे-छोटे क्षणों में बंटा है। बहुत होते भी थोड़ा है। पहाड़ से भी बड़ा होकर पकड़ने से मनुष्य की मुट्ठी में आ जाता है। ऐसी विचित्र वस्तु को स्वयं जाकर देखो।

जयन्त घर आया। घर से वह काम-काज की तलाश में बाहर निकला। पहले वह एक धनी व्यवसायी के कार्यालय में उससे मिलने गया। व्यवसायी ने उसका प्रयोजन जानकर बड़ी रुखाई से कहा—अभी आप कहीं और जाइए, मेरे पास समय नहीं है।

जयन्त को बड़ी निराशा हुई। साथ ही उसे यह जानकर आश्चर्य भी हुआ कि इतने बड़े धनी के पास सब कुछ है, लेकिन समय जैसी साधारण वस्तु नहीं है। वह घूमता-घामता एक आलसी रईस के यहां पहुंचा। रईस से उसने कहा—महाशय, आपके पास समय हो तो थोड़ा समय मुझे भी दीजिए। मैं बेकार आदमी हूं, आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूं।

रईस ने हंसकर कहा—आओ आओ, मेरे पास काफी समय है, जितना चाहो ले सकते हो। बैठो, मेरे

साथ एक बाज़ी शतरंज खेलो।

जयन्त बोला—महाशयजी, मैं शतरंज खेलना नहीं जानता। मैं तो अपनी आवश्यकता के सम्बन्ध में आपसे कुछ बातें करने के लिए आपका थोड़ा-सा समय लूंगा।

रईस—अमां, बैठो भी तो! आते ही रामकहानी कहने की क्या ज़रूरत? काम की बातें फिर करना, समय भगा थोड़े ही जाता है। इस समय आराम की बातें करो, गप-शप करो।

रईस उसे पास बिठाकर अपने पुरखों के ठाटबाट, रोबदाब के क़िस्से सुनाने लगा। उसे सुनते-सुनते जयन्त ऊब गया, लेकिन रईस की लच्छेदार बातों का अन्त ही नहीं था। घंटों बाद वह बातूनी रईस से बोला—महाशय, अब मेरी प्रार्थना भी सुन लीजिए—मैं काम की खोज में आया हूं।

रईस ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा—भाई, काम तो मेरे यहां एक भी नहीं है, कहीं और ढूंढ़ लो। मगर दिल बहलाने के लिए जब जाहो, यहां आते रहना—समय बिताने की ऐसी जगह दूसरी नहीं है।

जयन्त वहां से निराश होकर बाहर आया। इस समय दूसरे आदमी को देखकर उसे और भी आश्चर्य

हुआ। इसके पास समय तो आवश्यकता से कहीं अधिक था, काम कुछ भी नहीं! वह अन्य स्थानों पर नौकरी की खोज करने लगा। साथ ही, वह समय को भी समझने लगा। उसे एक-एक दिन उस बेकारी में एक युग की तरह मालूम होता था। समय किसी तरह काटे नहीं कटता था। कहीं कोई ऐसा दुःखी आदमी मिलता था, जिसका एक-एक क्षण पहाड़ जैसा भारी था। कोई कर्ज़दार मिलता था, जिसको कर्ज़ की अदाई की दूर की तारीख भी निकट मालूम पड़ती थी। ऐसी बुढ़िया मिलती थी जो अपने परदेशी बेटे की बाट जोहती एक-एक दिन को एक-एक वर्ष समझकर बिताती थी। ऐसे बीमार लोग मिलते थे जिन्हें साधारण रात सौ गुनी मालूम पड़ती थी। रेल की प्रतीक्षा में बैठे यात्री मिलते थे जिन्हें गाड़ी का एक घंटा देर से आना ऐसा लगता था मानो एक दिन बिताना है। कोई काम-काजी काम की उतावली में कहता था, जल्दी करो, समय थोड़ा है और कोई आलसी कहता था कि क्या जल्दी है, अभी बड़ा समय है। कोई हंस-खेलकर चौबीस घण्टे को एक क्षण की तरह बिताता था और कोई मुसीबत का मारा एक क्षण को भी एक शताब्दी समझता था। किसीके लिए वह कीमती था, किसीके

लिए फालतू ।

समय का यह विचित्र रूप था । उसकी नाप न घड़ी से हो सकती थी और न कलैंडर से । बेकार युवक का समय व्यर्थ नष्ट हो रहा था । वह अपने आचार्य के पास पहुंचा और अपना वृत्तान्त उन्हें सुनाकर बोला—गरुवर, समय को मैं आज तक पहचान भी नहीं सका, उसे मुट्ठी में पकड़ना तो दूर रहा; वही मुझे नचा रहा है। मैं तो यह समझता हूं कि इतने दिनों की पढ़ाई का समय नष्ट करके मैंने बड़ी भूल की है। पढ़-लिखकर बाहर देखता हूं तो कहीं धन है पर समय नहीं है, और कहीं समय है पर धन नहीं मिलता ।

आचार्य ने उसे समझाते हुए कहा—मैंने तुमसे पहले भी कहा था कि समय विचित्र वस्तु है । वह तुम्हें तब तक नचाएगा, जब तक तुम उसे वश में न कर लोगे । उसे वश में करने का ढंग यही है कि किसी भी उपयोगी काम में लग जाओ । काम में लग जाने पर भागता हुआ समय पकड़ में आ जाता है ; वह इतना छोटा बन जाता है कि कामकाजी आदमी उसे अपनी मुट्ठी में पकड़ लेता है ।

जयन्त—लेकिन लाख ढूंढ़ने पर भी मुझे कहीं काम मिलता ही नहीं तो कैसे अपने को काम में

लगाएं ?

आचार्य—तुम काम को भी तो नहीं पहचानते। बिना पहचाने तुम उसे कैसे पाओगे ? तुम तो काम का अर्थ नौकरी ही मान बैठे हो। नौकरी तो उसका निकृष्ट रूप है। काम तो चारों ओर से तुम्हें घेरे खड़ा है। आंख खोलकर देखो तो पचासों काम सामने ही मिलेंगे। किसी एक को अपनी शक्ति के अनुसार हाथ में ले लो और ध्यानपूर्वक उसे करने लगो; वही पूर्ण होकर तुम्हारे लिए सिद्धिदायी बन जाएगा। दुनिया में इतना काम है कि संसार के सब मनुष्य मिलकर भी उसे पूरा करना चाहें तो नहीं कर सकते। तुम जाकर घर का ही काम करो, खेती करो या कुछ भी करो। एक काम में लग जाने पर देखोगे कि दूसरा काम अपने-आप आकर सामने खड़ा है।

गुरु के उपदेश से उत्साहित होकर जयन्त घर आया। वह अपने घर पर ही काम ढूंढ़ने लगा। काम की कमी नहीं थी। घर में दस-पांच बीघे खेत था, वह मन लगाकर खेती करने लगा। सुबह-शाम जो समय मिलता उसमें वह गांव के बच्चों को लिखना-पढ़ना सिखाता। गांववालों ने उसकी विद्या से लाभ लेने के लिए एक पंचायती स्कूल खोल दिया। अब उसे

शरीर-मस्तिष्क दोनों के लिए काम मिल गया। उधर खेती से अन्न मिलने लगा, इधर स्कूल से वेतन। जयन्त अपने एक-एक क्षण का सदुपयोग करने लगा। समय उसके अनुकूल बन गया। उसे अनुभव होने लगा कि समय थोड़ा है, और काम बहुत है।

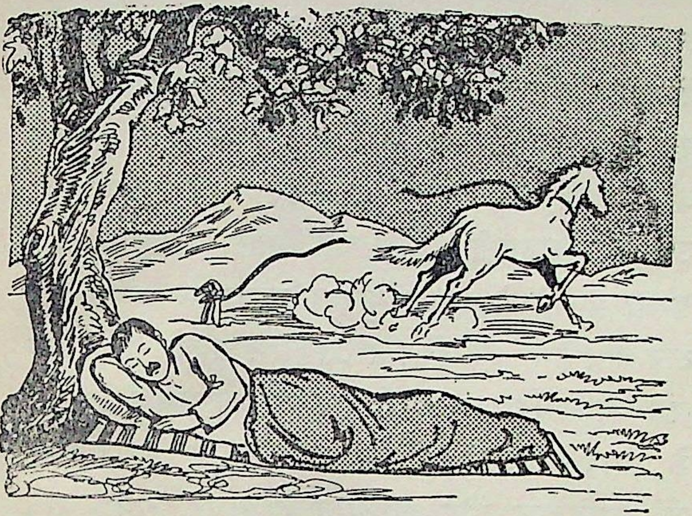

: १३ :

गुप्त शत्रु कौन है ?

पंडित अयोध्यानाथ अपने समय के नामी पंडित थे। उनके दो पुत्र थे। एक का नाम था अशोक और दूसरे का शंखनाद। अशोक पंडितजी के पूर्वजन्म के पुण्य का और शंखनाद उनके पाप का अवतार था। एक के रूप में उनके गुण फूले-फले थे, दूसरे के रूप में उनके दोष। एक तो पंडितजी के घर समुद्र का रत्न था, दूसरा घोंघा।

अयोध्यानाथजी शंखनाद के भविष्य के विषय में बहुत चिन्तित रहते थे। उसकी मूर्खता की बातें सुनकर और बेसिर-पैर के काम देखकर वे सिर धुनते और जो भी सामने पड़ जाता—उसीपर अपना क्रोध उसी तरह उतारते थे जैसे कोई थका-मांदा आदमी अपना पसीने से भीगा कुरता उतारकर खूंटी पर टांग देता है। एक दिन पंडितजी ने सोचा कि यदि शंखनाद का विवाह कर दिया जाए, तो संभव है, स्त्री के प्रभाव से उसका जीवन उसी प्रकार सुधर जाए जैसे कालिदास और तुलीदास का सुधर गया था। सो उन्होंने अपने ही गांव में उसका विवाह बिना अधिक सोचे-विचारे कर दिया।

विवाह के बाद शंखनाद पहले-पहल ससुराल जाने को तैयार हुआ। चलते समय उसकी मां ने उससे कहा—बेटा, ससुरजी को बाबा ही कहना, क्योंकि गांव में विवाह के बाद ससुर दामाद के बाबा बन जाते हैं। शंखनाद मन में तर्क-वितर्क करता हुआ ससुराल को चला। रास्ते में उसे ध्यान आया कि बाबा के लिए कुछ गुरु-दक्षिणा भी ले चलना आवश्यक है। उसने तुरन्त गुदड़ी बाज़ार से एक पीकदान को कमंडलु समझकर खरीद लिया। उसे अंगोछे में बांधे हुए वह ससुराल

पहुंचा। वहां ससुरजी सामने खड़े मिले। उनको देखते ही वह उनके पैरों पर नाक रगड़कर बोला—बाबू से भी अधिक पूज्य मेरे बाबा, आपका मृगछाला कहां है, कमंडलु कहां है, चिमटा, गोमुखी, रुद्राक्ष की माला कहां है ? आपने जटा क्यों नहीं बढ़ाई ? आपकी मूंछ-दाढ़ी किसीने उखाड़ ली है, तो बरगद के दूध से भैंस की पूंछ के बाल क्यों नहीं चिपका लेते ? बाबा, चन्दन न हो तो खड़िया मिट्टी का ही तिलक लगा लीजिए।

ससुरजी ने आशीर्वाद देकर कहा—चिरंजीवी हो जामाता।

शंखनाद चौंककर बोला—यह क्या है ? मैं तो आपके यहां प्रेम से आया और आप दुतकार कर कहते हैं कि जा माता ! हमारा-आपका जो नाता है, उसे भूलकर आप जा माता और जा भ्राता कहकर हमें यहां से क्यों भगाना चाहते हैं ?

इतने में ससुरजी के कच्चे-बच्चे 'जीजा-जीजा' कहते उसके पास आए। मूर्खराज ने कहा—यह क्या, यह क्या ! मेरे आते ही तुम लोग मुझे जी जा क्यों कहते हो ? मैं मुर्दा नहीं हूं। जी जा का मतलब क्या है ? क्या मैं यहां से चला जाऊं ?

ससुरजी ने उसको शान्त करके पूछा—कहिए, इस अंगोछे में क्या लाए हैं, मैं भी देख सकता हूं ?

शंखनाद गर्व से पुराना पीकदान दिखाता हुआ बोला—'अबसि देखिए देखन जोगू।' आपका नया चेला आपके लिए भेंट लाया है। इसे लीजिए और मुझे गुरुज्ञान दीजिए।

न जाने कितने वृद्ध रोगियों के इस्तेमाल किए हुए नवाबों के ज़माने के उस टूटे-फूटे पीकदान को ससुरजी ने चुपचाप रख लिया। इसके बाद मूर्ख दामाद को खिला-पिलाकर वे अपने ज्ञान का उपदेश देते हुए बोले—प्रिय पुत्र, तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु तो तुम्हारा बड़ा भाई है; उसकी बड़ाई से तुम्हारी छोटाई होती है। तुम अपने मां-बाप से लड़-झगड़कर अलग रहो तो अच्छा है, हमें अपना धर्मपिता समझो। अपने मां-बाप का तो तुम अधूरा प्रेम ही पा सकोगे, मेरा प्रेम देखो—तुम्हारे ऊपर विश्वास करके मैंने तुम्हें अपनी लड़की सौंप दी।

इस तरह मूर्ख को भड़काकर ससुरजी ने कुछ दिनों में उसे विदा कर दिया। घर आते ही शंखनाद अपने बाप से बिगड़कर बोला—बाबू, आप घरवालों

को रोक दीजिए कि मेरे बड़े भाई की बड़ाई न किया करें।

पंडित अयोध्यानाथ ने पूछा—क्यों ?

शंखनाद—क्यों का जवाब यों है। उससे मेरी बुराई होती है। मैं उनसे कम नहीं हूं। मैं भी वंश-लोचन हूं। यह नहीं हो सकता कि आप लोग उन्हें तो सन्तान समझें और मुझे जीनतान ; उन्हें सुशील समझें और मुझे जूते की कील या कोल-भील। मैं उनसे कम नहीं हूं ; मैं काठ का उल्लू नहीं हूं ; मैं बड़े-बड़ों को उल्लू बना सकता हूं; आप मुझे क्या समझते हैं ? मैं ढपोरशंख नहीं हूं।

शीघ्रकोपी पंडितजी बोले—नादान, ऊटपटांग बातें न कर ; तू जिसके साथ बड़प्पन का दावा करता है उसमें मेरी तपस्या की अग्नि का तेज झलकता है और तुझमें उस अग्नि की कालिख। वह अकेला भी भरी सभा के समान लगता है और तू भरी सभा में भी ऐसा लगता है जैसे भरे घड़े का छेद। मेरे विद्वान मित्रों में तू ऐसा लगता है जैसे खिलाड़ियों के बीच में पद-कन्दुक अर्थात् फुटबाल। जिससे तू लाग-डांट करने चला है वह पूर्वजन्म का भी पंडित है और तू गंगा-तट पर प्राण-त्याग करनेवाला कोई धोबी का

गधा जान पड़ता है; मैं तो यही समझता हूं। बड़ा बनना चाहता है तो बड़बड़ाना छोड़कर अच्छे गुण सीख। आदमी को उल्लू बनाने में नहीं, बल्कि उल्लू को आदमी बनाने में तारीफ है।

'बाबा' की सीख मानकर सिर मुंडाते ही शंखनाद पर ओले पड़े। वह बड़े भाई से और भी कुढ़ने लगा। पंडितजी ने उसे बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन उनका ज्ञान-जल उसकी चलनी जैसी खोपड़ी में अड़ता ही न था। अब एक दिन का हाल सुनिए: पंडितजी बड़े सवेरे उठे और प्राणायाम करने लगे। शंखनाद ने समझा कि बाबू का प्राण संकट में पड़ा है। वह चट-पट घर में से कड़वा तेल उठा लाया और बाप को ज़बरदस्ती लेटाकर उसे उनकी छाती में मलता हुआ बोला—घबराइए नहीं बाबू, फुफकारिए मत, दम न तोड़िए, हम रामबाण तेल लगा रहे हैं।

पंडितजी उठकर उसे पीटने लगे। वह चिल्लाता हुआ भागा—हाय बाबा, यह तो कोई प्रेत-बाधा है। अपने बाबा के पास जाकर उसने सारा हाल सुनाया। 'बाबा' ने कहा—आप नाहक भाग आए। अरे, जल्दी जाकर उनसे वसीयतनामा लिखवाइए। वसीयतनामा लिखवा लीजिए तो उनके न रहने का कोई शोक नहीं

होगा।

मूर्खराज फिर घर की ओर लौटा और दूर से ही चिल्लाकर बोला—बाबू, बाबू ! आपको न जाने क्या होनेवाला है; जायदाद तो आप अपने सिर पर ले नहीं जा सकते; उसका वसीयतनामा तो मेरे नाम लिखते जाइए।

पंडित अयोध्यानाथ ने उठकर नालायक लड़के को खूब पीटा। मार खाकर वह घर छोड़कर भाग गया। कुछ दिन उसने ससुराल में बिताए। वहां कुछ दिन तो आदर हुआ लेकिन बाद में फिर वही कहावत चरितार्थ होने लगी—'सास घर जमाई कुत्ता।' तब घरजमाई भागकर कलकत्ता चला गया और वहां हावड़ा स्टेशन पर कुलीगीरी करने लगा। वहां वह सात-आठ महीने तक अपने कंधे पर दूसरों का भार ढोता रहा। एक दिन पंडित अयोध्यानाथ किसी काम से कलकत्ता आए। संयोग की बात देखिए—इन्हींके डिब्बे के आगे शंखनाद 'बाबूजी, कुली चाहिए ; बड़े सरकार, कुली की दरकार है ?' कहता हुआ खड़ा मिला। उसने असली बाबू को नहीं देखा, लेकिन उसके बाबू ने उसे उसी तरह पहचान लिया जैसे लोहे को चुम्बक।

पंडितजी ने उसकी चोटी पकड़कर कहा—क्यों रे घर-घूर, कुली न बनकर कुलीन बनता, तो क्या तेरी शान में बट्टा लग जाता ? यहां जिस किसी लुच्चे-बदमाश को पाता है, अपना बाबू बना लेता है। हमारा स्थान कोई दूसरा नहीं ले सकता।

शंखनाद भों-भों करके बोला—हाय, भगवान का नाम रोज़ जपने से एक दिन भगवान सचमुच सामने प्रकट हो जाते हैं, वैसे ही प्रतिदिन रेल आने पर बाबू-बाबू रटते-रटते असली बाबू ही प्रत्यक्ष हो गए ! हे बाबू, अब हम आपके काबू में न रहेंगे ! स्टेशन-भवन त्यागकर आपके छोटे घर में खोटे भाई के साथ रहकर आपके सोंटे की चोटें क्यों सहें ? बंबे को छोड़कर लोटे का पानी क्यों पिएं ?

पंडितजी ने उसे बहुत कुछ समझाया। तब वह बोला—बाबू, एक सिर पर एकसाथ दो टोपियां नहीं लगाई जातीं ! आप पहले मेरे बड़े भाई को अपने सिर पर से उतारकर मुझे उसपर चढ़ाइए, तभी मैं चलूंगा।

पंडितजी ने कहा—अच्छा भाई, चल; कुल की मर्यादा को एक-एक आने पर मत बेच ; वह पूर्वजों की बड़ी गाढ़ी कमाई है। तू जैसा कहेगा, मैं वैसा ही

करूंगा ।

लौटते समय पंडितजी उसे साथ लाए । घर आकर उसने बाप से कहा—बाबू, हम दरोगा बनेंगे। बाप ने कहा—बेटा, जो चाहो बन जाओ ; तुम तो स्वयंभूत हो ।

बस फिर क्या था ! गुदड़ी बाज़ार से पेटी, नकली तमंचे आ गए, खाकी कपड़े बन गए; नकली चालान होने लगा। देहातों में शंखनाद ने धूम मचा दी। कहीं चोरी हो या न हो, शंखनाद की जांच जारी ही रहती थी । ससुरजी की खुशी का क्या कहना था ! अपना नकली रुपया चलाकर बहुत-से लोग बहुत खुश होते ही हैं । पंडित ने उस मूर्ख के आग्रह से उसके लिए एक घोड़ी भी खरीद दी । एक दिन वह घोड़ी पर चढ़कर किसी दूर के गांव में गंवारों को तंग करके कुछ कमाने-खाने चला गया । तीसरे पहर लौटा तो रास्ते में धूप बड़ी तेज़ थी ; इसलिए एक बाग में घोड़ी बांधकर वह छाया में सुस्ताने लगा। संयोग से उसे नींद आ गई। इस बीच में घोड़ी रस्सी तुड़ाकर भाग गई। जगने पर शंखनाद ने पहले तो उसे इधर-उधर खोजा, परन्तु वह नहीं मिली। तब वह पैदल ही घर लौटा और दूर से ही बाप को पुकारकर बोला—बाबू, आज तो

आपका पुण्य मौके से काम आया !

पंडितजी—क्यों पुलिसपाल बेटा, क्या हुआ ?

शंखनाद—घोड़ी लगाम की दफा १४४ तोड़कर भाग गई !

पंडितजी—तो इसमें खुश होने की क्या बात है ?

शंखनाद—आपके पुण्य के प्रताप से मैं उस समय उसपर नहीं बैठा था, नहीं तो मैं भी खो जाता। कौन जाने वह मुझे लेकर पाकिस्तान भाग जाती। क्या तब आपको खुशी होती ?

ये बातें हो ही रही थीं, कि इतने में उधर से असली दरोगा शंखनाद को पकड़ने के लिए आ पहुंचा। उसने कहा—पंडितजी, यह हमारा भेष बनाकर लोगों को ठगता है, यह भारी जुर्म है ; मैं तो इसे पकड़कर इसपर मुकदमा चलाऊंगा।

पंडितजी ने अपना पूरा प्रभाव लगाकर उस दिन उस दरोगा के पुतले को कानून के फन्दे में पड़ने से बचा लिया। इसके बाद उन्होंने घर से दूर कुछ ज़मीन-जायदाद लेकर शंखनाद को वहीं खेती में लगा दिया। उन्होंने सोचा कि काम में लगे रहने से उसका मन कुचक्र में न फंसेगा।

शंखनाद उस गांव में रहकर अपने बाप के बड़प्पन का अनुचित लाभ लेने लगा। उसकी आदत तो बिगड़ ही चुकी थी। उसने गांववालों को तंग करके उनपर अपना रोब जमाना शुरू किया। धीरे-धीरे उसने सारे गांव से वैर ले लिया। परिणाम यह हुआ कि एक दिन गांववालों ने रात में उसका खेत चरा लिया, दूसरे दिन खलिहान फूंक दिया, तीसरे दिन जानवरों को जंगल में हांक दिया। एक न एक पर झूठा शक करके वह रोज़ किसी न किसीसे लड़ जाता। देखते-देखते गांव में उसके शत्रुओं की एक सेना खड़ी हो गई। शंखनाद ने सोचा—हो न हो, मेरा कोई गुप्त शत्रु है जो सबको मेरे विरुद्ध उभाड़ता है, भड़काता है। वही पकड़ में आ जाए तो संकटों की जड़ काट दूं। उसने ससुरजी से भी राय ली। ससुरजी बोले—यह आपके दुष्ट भाई की करतूत है। आप वहां से भागिएगा मत; जायदाद को दबाए रखिए।

उन्हीं दिनों गांव में एक सिद्ध महात्मा आए। शंखनाद ने उनके पास जाकर भक्ति-भाव से कहा—महात्माजी, मेरा एक कोई गुप्त शत्रु है, वह सारे गांव को मेरे विरुद्ध भड़काता है। आप किसी मन्त्र-तंत्र से उसका पता लगा देते तो मैं उसे गुप्ती से मार डालता।

यह न हो सके तो कोई उच्चाटन मन्त्र बता दीजिए, जिससे मैं सारे गांव को उजाड़ दूं।

महात्मा ने सारा हाल सुनकर पूछा—तुम भी तो कुछ सोचो, वह गुप्त शत्रु कौन होगा?

शंखनाद—बाबाजी, मेरे शत्रुओं का प्रधान सेनापति तो मेरा बड़ा भाई है; वह अपनी खोपड़ी में ज्ञानगुप्ती रखता है और दूर से वार करना जानता है।

महात्मा—यह तुम्हारी भूल है; तूफान पेड़ों पर अपना बल दिखाता है, कुश-कांस पर नहीं।

शंखनाद—अरे महन्तजी, वह पिछले जन्म का चाणक्य है। बाबू ने हमें बताया था कि चाणक्य कुश को खोदकर उसकी जड़ में मट्ठा डालता था।

महात्मा—अच्छा, घबराओ मत; जो भी गुप्त शत्रु होगा, उसे मैं आज ही रात में पकड़वा दूंगा। तुम खूब खा-पीकर घर पर लेटना। रात में वह ज्योंही दिखाई पड़े, उसे पकड़कर थाने ले जाना। जाओ, उड़द, अरबी, कुम्हड़ा, बैंगन आदि खाकर जल्दी से जल्दी पुष्ट बन जाओ; आज तुम्हें अपने गुप्त शत्रु को पकड़ना है।

शंखनाद घर आया और रात में गले तक खाना

ठूंसकर बरामदे में लेट गया। तरह-तरह की शंकाएं करता हुआ वह झपकियां लेने लगा। इतने में एक आदमी मुंह पर कपड़ा डाले आया और उसका घर फूंकने को बढ़ा। शंखनाद तुरन्त उसकी ओर लाठी लेकर लपका। उस गुप्त शत्रु को लाठियों से पीटकर उसने बांध लिया और ले जाकर थानेदार के आगे खड़ा कर दिया। थानेदार ने अपराधी से डपटकर पूछा—क्यों रे, तेरा नाम क्या है ?

अपराधी बोला—श्रीमान पंडित शंखनादजी शर्मा।

शंखनाद ने चौंककर देखा, तो वह अन्य किसीको नहीं, स्वयं अपने को ही मार-पीटकर गिरफ्तार करवा रहा था। उसने घबराकर दरोगा से अपने इस पागलपन की माफी मांगी। इसके बाद वह बड़े तड़के महात्माजी के पास पहुंचा। उसके मुख से सारा हाल सुनकर महात्माजी हंसकर बोले—तुमने अपने गुप्त शत्रु को पकड़ ही लिया, बधाई है।

शंखनाद—कहां मिला ! वह तो मेरी छाया थी, जिसे मैंने चांदनी रात में आदमी समझकर पकड़ लिया था। मैं तो समझता हूं, यह सब धोखा या स्वप्न था !

महात्मा—नहीं, वह छाया नहीं, तुम्हारी नीचता

प्रकट हुई थी। जो कुछ हुआ है, वह मिथ्या नहीं, सत्य है। उसका रहस्य सुनो--मनुष्य का प्रधान शत्रु या मित्र बाहर नहीं, उसके भीतर रहता है। तुम सबके प्रति सद्भाव रखो तो सब तुम्हारे प्रति सद्भाव रखेंगे; दुनिया की मिट्टी में तुम बुराई के बीज बोओगे, तो तुम्हें बुराई के ही फल मिलेंगे। शंखनाद, दुनिया एक दर्पण की तरह है, उसके सामने टेढ़े खड़े होकर तुम अपना सीधा रूप नहीं दिखा सकते। दूसरे के रूप में मनुष्य अपनी ही अच्छाई-बुराई की छाया देखता है। कुटिल सबमें अपनी कुटिलता ही देखता है। तभी तो तुम्हें भाई के रूप में अपना वैरी दिखाई पड़ने लगा। तुम्हारी मूर्खता-भरी दुष्टता ही वैरी बनकर तुम्हें सता रही है। स्वभाव और बुद्धि को निर्मल करो तो तुम्हें कहीं शत्रु नहीं दिखाई पड़ेंगे।

शंखनाद भौचक्का होकर बोला—अच्छा, अच्छा, धर्मात्माजी, हमने मान लिया कि हमारी समझ ठीक नहीं है। लेकिन हमारे ससुरजी का भी कहना यही है कि हमारा बड़ा भाई हमारा शत्रु है। क्या वे भी मुझे धोखा देना चाहते हैं ? वे तो मेरे शुभचिन्तक हैं।

महात्मा—ऐसा आदमी, जो बनाना नहीं जानता, बिगाड़ना ही जानता है, किसीका शुभचिन्तक नहीं हो

सकता। उसे अपने पूर्वजन्म का कोई पाप समझो। वह तुम्हारा पूर्वजन्म का कोई गुप्त शत्रु है, जो हित-चिन्तक बनकर तुम्हारा अहित कर रहा है। तुम किसी-के बहकाने में न पड़कर अपने हृदय को शुद्ध करो, संशय त्यागो, ठीक रास्ते पर चलो। तब तुम्हें शत्रु का भय नहीं रहेगा।

शंखनाद को अपने गुप्त शत्रु का पता मिल गया। वह अपने हाथों से अपना सिर पीटता हुआ घर लौट आया।

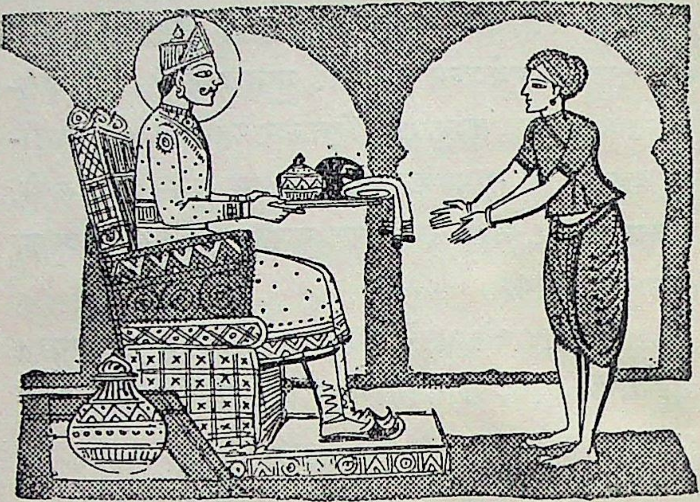

: १४ :

द्वेषी का पतन

एक गांव में दो पड़ौसी रहते थे—एक का नाम था देवदत्त, दूसरे का नाम था झब्बूलाल। पहला सज्जन और साधु था, दूसरा दुर्जन और द्वेषी। यही समझिए कि केले और बबूल का साथ था। झब्बूलाल अकारण देवदत्त से जलता था और उसके प्रत्येक कार्य में अड़ंगा लगाने का यत्न करता था। वह अपने पड़ौसी को हंसते-बोलते, खाते-पाते देख नहीं सकता

था। देवदत्त ने तंग आकर एक दिन उस गांव को छोड़ दिया। वह दूर के एक गांव में एक छोटी-सी कुटी बनाकर साधु-सन्त की तरह रहने लगा। वहां थोड़े ही दिनों में वह बड़ा लोकप्रिय भी हो गया। सारे गांववाले उसके भक्त बन गए। सबकी सहायता से उसकी कुटी के पास एक शिवालय और एक पक्का कुआं भी बन गया। वह अपना जीवन परोपकार में बिताने लगा और गांववाले उसके सत्संग से अपनी उन्नति करने लगे।

होते-होते देवदत्त की कीर्ति झब्बूलाल के कानों तक पहुंची। ऐसा मालूम हुआ मानो बुखार के रोगी को ठंडी हवा का झोंका लगा। झब्बू जीते-जी उसकी बढ़ती नहीं देख सकता था। वह देवदत्त को जान से मार डालने का निश्चय करके उसकी कुटी की ओर चल पड़ा। रात में वह वहां पहुंचा, तो देवदत्त ने मित्र की तरह हृदय खोलकर उसका स्वागत किया। झब्बूलाल ने भी बाहरी प्रेम दिखाकर कहा—देव भाई बहुत दिनों से मैं तुम्हारी याद में बावला हो रहा था, लेकिन काम की अधिकता से अब तक नहीं आ सका। आज एक गुप्त रहस्य बताने के लिए मुझे यहां तक आना ही पड़ा।

देवदत्त—कहो भाई, कौन-सा रहस्य है ?

झब्बूलाल—यहां कहना ठीक नहीं, यहां से कहीं दूर चलो—वह एक ऐसा रहस्य है जिसे अन्तर्यामी देवता भी नहीं जान सकते।

देवदत्त निष्कपट भाव से उसके साथ चल पड़ा। झब्बूलाल उससे बातें करता हुआ दूर के एक जंगल में एक अन्धे कुएं के पास पहुंचा। वहां मौका देखकर उसने देवदत्त को उसमें ढकेल दिया और स्वयं अपने गांव का रास्ता लिया।

उस कुएं में पानी नहीं था, इससे देवदत्त के प्राण तो बच गए, लेकिन वह उसमें से निकल नहीं पाया। वहीं पड़े-पड़े वह अपना अन्तकाल निकट जानकर ज़ोर-ज़ोर से राम-नाम का पाठ करने लगा। संयोग की बात, दो-तीन दिन बाद उसी रास्ते से उस देश के राजा के दो कर्मचारी आए। उन्होंने कुएं में से राम-नाम की ध्वनि सुनी। पास आकर एक-दूसरे से बोला—भाई, काम सिद्ध हो गया। इस कुएं में कोई तपस्वी महात्मा है, इसको निकालकर ले चलो। दोनों ने यत्न से देवदत्त को बाहर निकाला और दंडवत् करके उससे कूपवास का कारण पूछा। देवदत्त साधु था, दुष्ट झब्बू से बदला नहीं लेना चाहता था। इसलिए उसने सच्चा

हाल उनसे नहीं बताया। राजकर्मचारियों ने यही समझा कि वह पाताल-लोक का कोई सिद्ध महात्मा है। वे उसको राजा के पास ले जाकर बोले—महाराज, ये पाताल-लोक के सिद्ध-प्रसिद्ध महात्मा हैं, हमारे सौभाग्य से राम-नाम उच्चारण करते हुए पृथ्वी को फोड़कर स्वयं प्रकट हुए हैं। राजकुमारी की भूत-बाधाएं अवश्य दूर करेंगे।

राजा ने देवदत्त का स्वागत-सत्कार करके उसको बताया कि राजकन्या को कोई पिशाच लग गया है जो सिर पर से उतरता ही नहीं। देवदत्त मन में समझ गया कि यह मन के भ्रम के सिवा और कुछ नहीं है; लेकिन उसने सोचकर कि भ्रम की दवा श्रद्धा-विश्वास है, अपने मन के भाव को प्रकट नहीं किया। उसने तत्काल राजकुमारी के पास जाकर मंत्र पढ़कर उसपर पानी छिड़का। राजकन्या के सिर से भ्रम का भूत अपने-आप उतर गया। राजा ने इस विचार से कि कहीं लड़की को दुबारा वही भूत पकड़ लेगा तो कौन उद्धार करेगा, देवदत्त के साथ ही उसका विवाह कर दिया।

देवदत्त राजा का दामाद होकर ठाट-बाट से रहने लगा। कुछ दिनों में राजा की मृत्यु हो गई। उसके कोई लड़का नहीं था, इसलिए राजगद्दी पर देवदत्त ही

बैठा। उधर झब्बूलाल को इन बातों का कुछ भी पता नहीं था। वह तो यही समझे बैठा था कि देवदत्त देवलोक को पहुंच गया।

राजा होने के बाद देवदत्त ने सबसे पहले झब्बूलाल की खबर ली। उसने राजमंत्री द्वारा उसे बुलवाया। झब्बू ने दरबार में पहुंचकर देखा तो उसका महाशत्रु ही गद्दी पर बैठा था। उसके सिर पर सोने का मुकुट था, दोनों ओर से चांदी के चंवर चल रहे थे। वह आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगा—बार-बार देखने पर भी विश्वास नहीं हुआ तो चश्मा लगाकर देखने लगा। इतने में राजा देवदत्त ने उठकर उसे प्रेम से पास बुलाया और बिठाया। राजाज्ञा से तुरन्त बहुमूल्य वस्त्र और सहस्रों रुपयों से भरा हुआ सोने का थाल वहां लाया गया। देवदत्त ने उसको झब्बूलाल को भेंट करते हुए कहा—मित्रवर, तुम्हारे कारण ही आज मैं इस दशा को पहुंचा हूं, मैं आज इस योग्य हो गया हूं कि तुम्हारा कुछ उपकार कर सकूं। तुम इस भेंट को स्वीकार करो और आनन्दपूर्वक रहो, इसीमें मुझे सुख है।

झब्बूलाल के हृदय में द्वेष की आग धधकने लगी। जिसको वह फूस की झोंपड़ी में बैठे नहीं देख सकता था, उसीको राजमहल में ऐश्वर्य भोगते कैसे देखता!

वह धन-वैभव-संपन्न होकर इस योग्य होगया था कि किसीपर दया करके उसे कुछ भी दे सकता था। उसकी यह उन्नति झब्बूलाल को असह्य थी। उसके हृदय में ऐंठन होने लगी। भयंकर मनोवेदना से तड़पकर वह वहीं मर गया। देवदत्त को इसका बड़ा दुःख हुआ, लेकिन वह क्या करता! उसने तो अपकार का बदला उपकार से देना चाहा था। द्वेषी अपने ही हृदय की जलन से जलकर मर गया।

: १५ :

अपने-पराये का भेद

बहुत दिन हुए बिहार का एक व्यापारी गुजरात में जाकर व्यापार करने लगा। उसके केवल एक पुत्र था। उसे उसने पढ़ने के लिए नालन्दा के विश्व-विद्यालय में भर्ती करवा दिया था।

गुजरात में उस व्यापारी का काम धूमधाम से चला। कई वर्षों तक अच्छी कमाई करके एक दिन वह बीमार हो गया। बीमारी साधारण नहीं थी। बड़े-बड़े वैद्यों ने जवाब दे दिया। व्यापारी को

अपनी मृत्यु अपने निकट ही दिखाई पड़ने लगी। मरने से पहले किसी भी उपाय से अपने इकलौते बेटे को इतनी दूर से नहीं बुला सकता था। इसलिए उसने वहां के न्यायाधीश को अपनी सारी सम्पत्ति सौंपकर यह कह दिया कि यदि मैं मर जाऊं तो मेरे पुत्र अशोक को नालन्दा से बुलवाकर इसे उसको दे दीजिएगा। इसके दो ही चार दिन बाद सेठ मर गया। उसके मरते ही न्यायाधीश ने उसके पुत्र के पास सारा समाचार भेजकर शीघ्र गुजरात आने की सलाह दी।

नालन्दा में न्यायाधीश का सन्देश पाकर सेठ का युवक पुत्र रोता हुआ अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार करने गुजरात की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसे एक धूर्त युवक मिला। उसने अशोक से उसके दुःख का कारण पूछकर पता लगा लिया कि वह लाखों की सम्पत्ति का मालिक होने जा रहा है। धूर्त ने उसके साथ बड़ी सहानुभूति दिखलाकर कहा—प्यारे मित्र, मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि मेरे पिता ही मर गए हैं, तुम्हारा दुःख मुझसे सहा नहीं जाता। भैया, घबराओ मत, दुनिया में यह सब होता ही रहता है—चलो, मैं तुम्हें गुजरात तक पहुंचा दूंगा, नहीं तो तुम अकेले

बाप की याद में बौखला जाओगे। मैं तुम्हारे साथ हूं, किसी प्रकार की चिन्ता न करना, रुपये-पैसे घटें तो निस्संकोच मुझसे मांग लेना।

यात्रा में साथी किसे नहीं प्रिय लगता ! सीधा-सादा अशोक उसकी माया में फंस गया और उसे अपना पक्का शुभचिन्तक परम प्रिय मित्र मानने लगा। दोनों गुजरात की ओर बढ़े और रास्ते में संकट झेलते, बोलते-चालते गुजरात पहुंच गए। दोनों न्यायाधीश के सामने गए। वहां अशोक ने उन्हें अपना परिचय दिया। इतने में उसके साथी ने आगे बढ़कर कहा—सरकार, मैं सेठ का पुत्र हूं, आपका संदेश पाकर नालन्दा से पूज्य पिता की सम्पत्ति का अधिकार लेने आया हूं। यह तो कोई मक्कार है। देखिए न, इसके चेहरे से इसकी मक्कारी उसी तरह टपकती है, जैसे फूटे घड़े से पानी की बूंद।

अशोक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जिसे वह भाई से भी बढ़कर मानने लगा था, वह उसका गला काटनेवाला बन गया। वह अपने पिता की याद में रोने लगा। उसे रोते देखकर धूर्त भी अपनी छाती पीटकर रोने लगा। एक कहता था कि मैं व्यापारी का उत्तराधिकारी हूं, और दूसरा कहता था

कि मैं । न्यायाधीश बड़े चक्कर में पड़ गए । वहां व्यापारी के असली पुत्र को पहचाननेवाला कोई नहीं था ।

अन्त में न्यायाधीश को एक तरकीब सूझी । उन्होंने न्यायालय में व्यापारी का एक चित्र मंगवाया । उसे कुछ दूरी पर रखकर उन्होंने चित्र में व्यापारी की छाती के पास एक चिह्न बनाया । इसके बाद दोनों युवकों के हाथों में एक-एक तीर-धनुष देकर कहा कि जो कोई इस चिह्न पर ठीक निशाना लगा देगा उसीको मैं व्यापारी का पुत्र मान लूंगा ।

पहले उनमें से एक धनुष-बाण लेकर बड़े उत्साह के साथ लक्ष्य भेदने के लिए आगे बढ़ा । उसने बड़ी सावधानी से तीर चलाया । तीर ठीक निशाने पर तो नहीं लगा, लेकिन उससे चित्र में व्यापारी का पेट फट गया । इसके बाद न्यायाधीश ने दूसरे युवक को बुलाया । उसने हाथ में धनुष-बाण लेकर चित्र की ओर ध्यान से देखा । उसे देखते ही उसका हृदय प्रेम से उमड़ पड़ा । उसने धनुष-बाण फेंककर बड़ी श्रद्धा से उस चित्र के सामने अपना सिर झुका दिया और न्यायाधीश से कहा—महोदय, आप पिताजी का सारा धन इस नवयुवक को दे दीजिए, लेकिन कृपा करके

इस चित्र को मुझे प्रदान कर दीजिए। यह मेरे पूज्य पिता का चित्र है। मैं संसार की किसी भी सम्पत्ति के लोभ से अपने हाथों उनके हृदय पर आघात नहीं करूंगा।

यह कहते-कहते वह शोक से विह्वल होकर गिर पड़ा। न्यायाधीश ने उसे उठाकर कहा—युवक मैंने तुम्हें पहचान लिया। अपनी सहृदयता से तुमने प्रमाणित कर दिया कि व्यापारी के सच्चे पुत्र तुम्हीं हो।

सचमुच अशोक वही था। न्यायाधीश ने उसे उसके पिता की सम्पत्ति सौंप दी और उस धूर्त को जेल में डाल दिया।

○ ○ ○

118

Sri Pratap Singh Library Srinagar.

SPS
891.433 A 48 J
25625